PONDICHERRY UNIVERSITY

DIRECTORATE OF DISTANCE EDUCATION

भारतीय साहित्य

(BHARATIYA SAHITYA)

(Paper Code: MAHD1006)

M.A. (HINDI) – I Year

DDE – WHERE INNOVATION IS A WAY OF LIFE

PONDICHERRY UNIVERSITY

(A Central University)

DIRECTORATE OF DISTANCE EDUCATION

भारतीय साहित्य

(Paper Code: MAHD1006)

M.A (Hindi) – I Year

Author:

Dr. S. Padmapriya
HOD of Hindi
Dept. of Hindi
Pondicherry University
Puducherry.

भारतीय साहित्य

- भारतीय साहित्य की अवधारणा।
- भारतीय साहित्य अध्ययन की समस्याएँ।
- भारतीय साहित्य का समाजशास्त्र - भारतीय साहित्य को रुपायित करनेवाली विवध विचारधाराएँ।
- हिन्दी साहित्य में भारतीय मूल्यों की अभिव्यक्ति- भारतीय साहित्य का समाजशास्त्र।
- उपन्यास, एक कवितासंग्रह, एक नाटक, अध्ययन और मात्र आलोचनात्मक प्रश्न हेतु।

❖ गहन अध्ययन

- उपन्यासः अग्निगर्भ - महाश्वेता देवी (बंगाली मूल)
- नाटकः हयवदन - गिरीश कर्नाड (कन्नड)
- कविताः वर्षा की सुबह -सीताकांता महापात्र (उडिया मूल)

❖ **विवेचनात्मक प्रश्नः-**

- भारतीय साहित्य की अवधारणा और उद्देशय को व्यक्त कीजिए।
- भारतीय साहित्य के समाजशास्त्र पर एक लेख लिखिए।
- भारतीय साहित्य के अध्ययन की समस्याओं को उद्घाटित कीजिए।
- भारतीय साहित्य में अभिव्यक्त भारत के बिम्ब का सांगोपांग विवेचन कीजिए
- हयवदन नाटक की कथावस्तु का वर्णन करते हुए नर-नारी के सम्बन्धों की अपूर्णता को उजागर कीजिए।
- अग्निगर्भ उपन्यास के नाम की सार्थकता पर प्रकाश डालिए।
- अग्निगर्भ उपन्यास का कथानक संक्षिप्त में लिखिए।
- देवदत्त का चरित्र-चित्रण।
- वर्षा की सुबह में व्यकत प्रकृति वर्णन का विश्लेषण कीजिए।

❖ **कविताओं का सारांश लिखिएः-**

- वर्षा की सुबह
- उस पार
- मृत्यु
- एक किशोर की मृत्यु
- आकाश
- हम
- सारी बातों के बाद
- अधेड
- या देवी
- शब्द-रूप

❖ उत्तर दीजिए।

- हयवदन नाटक कैसा नाटक है ?
- हयवदन का शरीर किसका था ?
- गिरिश कर्नाड के नाटक में सड़क पर गंदगी फैलाने किसने रोका है ?
- घोडा बनने पर हयवदन को क्या परेशानी हुई ?
- भारतीय सांस्कृतिक खोज पर व्यंग्य करने वाली कविता कौन-सी है?

भारतीय साहित्य की अवधारणा

भारत वर्ष की अवधारणा

हिमालय और समुद्रों के बीच के भूखंड का सर्वस्वीकृत नाम भारत वर्ष है। बौद्ध ग्रंथों में इस प्रदेश को जम्बूद्वीप कहा गया है। इस भूखण्ड को 'कुमारी द्वीप' भी कहा जाता है किन्तु यह नाम साहित्य तक ही सीमित रहा।

भारत नाम का आधार मुख्यतः सांस्कृतिक और राजनैतिक है। वह भू खण्ड जो एक- भौगोलिक , जाल पर निर्भर रहता है- ही मौसमी हवाओं से मिलने वाली वृष्टि और मेघ परिभाषा के अनुसार"वर्ष" कहलाता है।

भरत मुनि की व्युत्पति का उल्लेख प्राचीन साहित्य में कुछ इस प्रकार मिलता है:-

1. पुराणों के अनुसार प्रतापी दुष्यन्त के पुत्र भरत ने इस भूखण्ड में चक्रवर्ती राज्य की स्थापना की । सागर पर्यन्त पृथ्वी तक भरत का लोकों को गुंजने वाला (लोक सनंदन) चक्र अविजित फैल गया और पर्वतों एवं जंगलों से भरी समुद्र परिवेष्टित सशैलवन सागरा इस धरती का नाम भारत पडा।
2. भारत नाम की दूसरी व्युत्पति का आधार देश में बसने वाला जन है। आर्यों के एक अतिप्राचीन जन का नाम भरत था जो दिल्ली भाग में सबसे पहले- कुरूक्षेत्र के भू- ज्यों भरत जन का विस्तार होता गया- बसा। यह प्रदेश भरत जनपद कहलाया। ज्यों त्यों भरती प्रजा नामक संज्ञा के अर्थों का भी विस्तार हुआ।-त्यों

"भरत्येष प्रजाः सर्वास्ततो भरत उच्चते।"

इस भूखण्ड पर एक ओर निषाद संस्कृति थी ,उराँव ,हो ,शबर ,जिसके अंतर्गत मुंडा , संस्कृतियाँ थीं। बाद में इन- तो दूसरी ओर द्रविड और आर्य , नाग आदि अनेक जातियाँ थी तीनों संस्कृतियों का संगम भी यहाँ प्रभूत मात्रा में हुआ।

आर्य संस्कृति का प्रतीक अग्नि था। इसी अग्नी को प्राचीन वैदिक साहित्य में "भारत" कहा गया है -

"भारतो हविषो भर्ता अग्निः। प्राणी भूत्वा प्रजा धारयन् भारत इति वाजसनेयकम्।"

अर्थात - भारत कौन है हवि का भरण करने वाला अग्नि ही भारत है। अग्नि अध्यात्म रूप से प्राण बन कर प्रत्येक प्राणी के भीतर जीवन धारण करता हुआ भारत है।"

इस नामाकरण से भावना का औदात्य स्पष्ट होता है न , इसमें न धर्म की बाधा है , रूप से प्रजाओं-जाति आथवा संप्रदाय की। प्राणके भीतर प्रतिष्ठित अग्नि सार्वभौम सत्य है। यज्ञ में जो अग्नि प्रज्वलित होती है वह इस प्रणाग्नि का बाह्य रूप है।

विभिन्न प्रन्तों में वेदियों में प्रज्वलित भारत अग्नि का प्रदेश से दूसरे प्रदेश में विचरण करती हुई इस देश में सर्वत्र घूम गई। सब प्रजाओं का समान रूप से पालन करने के कारण यह अग्नि भरत कहलाई-और देश के चारों खूंटों में फैलने लगी ,

"एवं त्वजनयद् धिष्ण्यान् वेदोक्तान् विविधान बहूंन्।

विचरन् विविधान् देशान् भ्रममाणस्तु तत्र वै।।"

इस अग्नि के मुख में जो पडा वहीं राष्ट्र शरीर का अंग बन गया। इस विराट अग्नि-में भी अनेक प्रकार के रहन जिन्हें हम एक शब्द-विचार और जीवन की ,विधान-विधि ,सहन-आहुतियाँ निरन्तर पडती रही हैं। राष्ट्रीय संस्कृति की यह अग्नि - में संस्कृति कह सकते हैं दिन प्रज्वलित रहती है। बहुत से अनमेल तत्व उसमें आहुति बन कर मिलते हैं। इस-रात प्रकार भारत भरणात्मक है और समन्वय प्रधान जीवनपद्धति इसकी विशेषता है।-

मुलमानों के आगमन के साथ ही इस भूखण्ड का नाम हिन्दुस्तान पडा जिसके पीछे "हिन्दु" शब्द है। "हिन्दु" संस्कृति के "सिन्धु" की विकृति है। ईरानी सम्रट द्वारा छठी शती ईस्वी पूर्व में "सिन्धु" नदी के आस-पास के प्रान्तों के लिए जो कि इस भूखण्ड के उत्तर - ,पश्चिम में स्थित हैं"हिन्दु" शब्द का प्रयोग किया। फारसी में यह शब्द प्रचलित हुआ और इसी के आधार पर यूनानियों ने इस देश को इंडिया कहा। इस प्रकार "इंडिया" नाम प्रचलित हो गया।

भारतीय राष्ट्रीयता विषयक विविध आधुनिक विचार

आधुनिक विश्व "राष्ट्रों" में विभाजित है और आधुनिक भारत भी एक विशाल "राष्ट्र" के रूप में स्थापित एवं परिणत हुआ है। "राष्ट्र" क्या है? इस प्रश्न का एक विशिष्ट संदर्भ है क्योंकि तेजी से परिवर्तित हो रहे विश्व में "राष्ट्र" की परिभाषाएँ अपर्याप्त गोचरित होने

लगी हैं। धर्म संस्कृति आदि का कोई आधार आज पर्याप्त नहीं है। कोई मानक सूचक ,भाषा , नहीं रहे।

भारत ने स्वतंत्रता पूर्व और स्वतंत्रता के बाद अनेक चुनौतियों एवं बहुमुखी परिवर्तनों इसमें दो , का सामना किया है। उपनिवेशवाद ने भारत के सहज विकास को अवरुद्ध किया - राय नहीं हो सकते। इस संबंध में एक प्रश्न अनिवार्य रूप से उठता है कि भारत के राष्ट्र निर्माण की चुनौती का चरित्र राजनैतिक है अथवा सांस्कृतिक आयामों से संबंधित है विडम्बना यह है कि हमारे राष्ट्रीय नायकों ने भी राष्ट्रवाद और भारतीय की अवधारणा के लिए उस आधुनिकतावाद का सहारा लिया जो पंद्रहवीं सदी में "रिनैसाँ" से शुरू हुआ। विचारों के इतिहास तथा सामाजिक परिवर्तन की दृष्टि से यूरोप के पंडितों द्वारा "रिनैसाँ" से आधुनिक युग का और फ्रांसीसी क्रांति से वर्तमान युग आरंभ माना जाता है। आज राष्ट्रीयता की कसौटियाँ निरधारित करने के प्रशन से जूडे चार पक्ष वाद-विवाद के केन्द्र में रहे हैं-

1. भारत सदियों से एक राष्ट्र रहा है।
2. भारत एक राजनीतिक इकाई कभी नहीं रहा।
3. भारतीय भविष्य का आदर्श यूरोप में।
4. सुदूर अतीत में आदर्शों की खोज।

भारत सदियों से एक राष्ट्र रहा है

"राष्ट्र" की परिकल्पना से भारतवर्ष कभी वंचित नहीं रहा। "सत्य" तो यह है कि राष्ट्र शब्द भी हमें अपने वेद कालीन पूर्वजों से प्राप्त हुआ हैः और उक्त संज्ञा के साथ जो प्राकृतिक परिवेश और उसमें अंतर्निहित रागत्मक भावना है वह भी परंपरागत उत्तराधिकार , मानी जाएगी।

प्राचीन भारतीय साहित्य में "राष्ट्र" की परिकल्पना काफी विकसित दिखाई देती है। राष्ट्र - प्राप्ति की कामना शत्रुदमन तथा ,"राष्ट्र" की समृद्धिवर्धन हेतु की गई प्रर्थनाएँ " इस तथ्य को स्पष्ट करती हैं। अथर्ववेद में कहा गया है कि "जिस राष्ट्र में विद्वान सताए जाते हैं वह विपत्तिग्रस्त होकर वैसे ही नष्ट हो जाता है जेसे टूटी नौका जल ,में डूबकर नष्ट हो जाती है।"

पंचमवेद तथा "राष्ट्रीय काव्य" की संज्ञा से अभिहित महाभारत में भी भारत को सबसे उत्तम व प्रिय घोषित किया गया है।

प्रचीन भारत को एक ही छत्र छाया के अधीन लाने के प्रयास हमें अश्वमेध यज्ञों के-रूप में मिलते हैं।

भारत एक राजनीतिक इकाई कभी नहीं रहा

एक धारणा जो व्यापक स्तर पर अंग्रेजों द्वारा फैलाई गई थी और अंग्रेजी शिक्षा--वह है ,प्रप्त भारतीयों द्वारा पुष्ट की गई

अंग्रेजों के आगमन और राज्य स्थापना से पूर्व भारत में-"राष्ट्रीयता" का कोई भाव नहीं था और इस अभाव को पाटकर इस देश को एकता के सूत्र में बाँधने का श्रेय अंग्रेजों को ही जाता है।

वस्तुतः आधुनिक भारत के इतिहास में "राष्ट्रीयता" के बोध में मूलतः यही विचार रहा है। सन् में अलॉन आक्टेवियन ह्यूम द्वारा घोषित तीन स्तरीय कार्यक्रम पर 1888 किंचित ध्यान दें तो अंग्रेजी नीति का स्वार्थ स्पष्ट हो जाता है। ए ह्यूम .ओ ."भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस " के मूल संस्थापकों में प्रमुख थे जिन्होंने काँग्रेस के "मूलभूत नियमों"(Fundamental Principles) की उद्घोषणा की थी -

"प्रथम भिन्न भिन्न एवं हाल तक विघटित उन तत्वों का एक-"राष्ट्र" के अंतर्गत समीकरण जिनसे भारत का जनजीवन गठित हुआ है।-"

"दूसरा इस प्रकार उभरे राष्ट्र का मानसिक सामाजिक एवं राजनैतिक स्तरों ,नैतिक , पर क्रमशः शनैः शनैः पुनरुद्धार करना।"

"तीसरा इंग्लैंड और भारत के गठजोड़ के लिए समझौतों में एसे परिवर्तनों को करना , जो इंग्लैंड के लिए अन्यायपूर्ण अथवा क्षतिकारक न हों।"

पर इस देश की सबसे बडी विडमबना यह रही कि आज हमारे देश में यही प्रचलित है कि -"अंग्रेजी शिक्षा के कारण ही यह कि आज हमारे देश आज़ाद हुआ है और अंग्रेजों ने ही भारत की एकता कायम की है। आधुनिक काल में राष्ट्रीयता का जो स्वरूप उभरा और विकसित हुआ उसके तीन आधार हैः-

क. पूरे देश में अंग्रेजी शासन की स्थापना

ख. समग्र भारतीय प्रजा द्वारा अंग्रेजी शासन से उत्पन्न यातना का समाज अनुभव तथा,

ग. स्वाधीनता व्यापी प्रसार।-आन्दोलन और उसका देश-

आरम्भ में भारतीय प्रतिनिधियों कों स्वतंत्र भारत स्थापित करने की कोई जल्द बाजी- नहीं थी और एसे शासन प्रणाली की स्थपना की आवश्यकता भी वे महसूस नहीं करते थे जिनमें अंग्रेजों का कोई स्थान न हो। प्रायः यह अभिप्राय भी स्थिर होने लगा कि यदि अंग्रेज न आए होते तो हिन्दुस्तान टुकडों में ही बंटा होता। फिरोजशाह मेहता ने बंबई में संपन्न हुए काँग्रेस के पाँचवे अधिवेशन में अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा कि शिक्षा एवं विवेकदाता अंग्रेजों की मदद से ही चार साल पहले काँग्रेस की स्थापना हुई जिसमें राष्ट्रय एकता की भावना को पुष्ट किया और अंग्रेजी शासन के इस महानतम परिणाम का स्वागत हमारी , राजभकित की निशानी के तौर पर करना चाहिए। मेहता जी के इन विचारों का करताल ध्वनियों द्वारा स्वगत किया गया था। चूँकि यह बात व्यापक रूप से प्रचलित हो गई थी कि भारत में"राष्ट्रीयता" नामक कोई चीज ही नहीं है और वह टुकडों में बँटा गुलाम देश है , हमारे प्रतिनिधियों ने भारतीय एकता पर बल देना आरंभ किया और इसकी जिम्मेदारी भी अंग्रेज शासकों को ही सौंपी। दादाभाई नवरोजी ने सन् के 1893"इंडियन नेशनल काँग्रेस" के अधिवेशन में यह घोषणा की – "चाहे मैं हिन्दु पारसी अथवा क्रिश्चियन या किसी ,मुसलमान , भी जाति का हूँ पर सबसे पहले मैं भारतीय हूँ।" और उन्होंने कहा कि सभी शिक्षित एवं देश के सहृदय मित्र अपनी शक्ति की परिधि में एक "समाज राष्ट्रीयता" की सशक्त एवं देश मैत्रीपूर्ण भावना जगने तथा एक दूसरे के भावों का उचित सम्मान करने को प्रयासरत हों। और इसकी जिम्मेदारी भी अंग्रेज सरकार को अपनी राजभक्ति के निरूपण स्वरूप सौंपी। आधुनिक मानदण्डों के अनुसार दादभाई नवरोजी शायद राष्ट्रवादी ही न माने जाएं क्योंकि उन्होंने कभी स्वतंत्रता की माँग नहीं की बल्कि अंग्रेजी शासन को भारत को सुधार के लिए आवश्यक माना । जब इस प्रतिपादन से मोहभंग हुआ तो अंग्रेजों की मदद से "सुराज" स्थापित करने के प्रयत्न रूक गए और "स्वराज" का नारा बुलन्द हुआ। "अनेकता में एकता" का सूत्र भी यही से एक मूल मंत्र के रूप में स्थापित हुआ।

भारतीय नेता प्रायः सभी धर्मों की अनेकता ,जिनमें काँग्रेस के नेता भी सम्मिलित है , को राजनैतिक एकता में परिणत करने की संभावना को ही साकार करने में प्रयत्नरत रहे और इस अनेकता को अनजाने ही अधिक प्रमुखता प्राप्त होती रही। जहां स्वतंत्रता प्राप्त करने में इस नारे ने विशेष कार्य किया वहीं आजादी के बाद इसने अप्रत्यक्ष रूप से , "अलगाव" की भावना को ही उभारा। राष्ट्रीयता के इस मूलमंत्र ने हमारे अलग होने के प्रति हमें सचेत किया। यह हमें उन वक्तव्यों में स्पष्ट दिखाता है जो हमारे राष्ट्रीय नेताओं ने

अंग्रेजों के विरूद्ध लडने के लिए भारतीय प्रजा को एकजूट करने के लिए दिए थे। जैसा कि दादाभाई नवरोजी के कथन से स्पष्ट है जो पहले दिया जा चुका है। भारतीय एकता पर अपने वक्तव्य में सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी ने कहा कि -"एकता की पवित्र परिकल्पना को सम्मान देना सीखों समान दुखों को पर्याप्त , एक दूसरे को भाई समझना एवं प्यार करना सीखों , ,कारण मानना सीखों और राष्ट्रों का महान देव दलित जनों के अधिकारों का संरक्षक तुम्हारी ओर करूणा दृष्टि सारिता करे और तुम्हारे देश में प्रकाशमान दिवस को उदित करने की दया करें।" मदन मोहन मालवीय जी ने भी के अपनी अध्यक्षीय भाषण में कहा 1909"इससे क्या फर्क पडता है कि भारत की एक विशाल जनता में से कुछ हिन्दुओं को थोडा अधिक फायदा हो अथवा कुछ मुसलमानों की स्थिति कुछ हिन्दुओं को थोडा अधिक फायदेमन्द हो। राष्ट्र के उदात लक्ष्यों की प्राप्ति की दिशा में ऐसे छोटे विषय दीर्धकालीन उद्देश्यों को हानि पहुँचाते हैं। ऐसा विचार भी कितना महान है जिसके अंतर्गत देशभक्ति के उच्च आदर्शों के लिए हिन्दू , पारसी एवं ईसाई कंधे मिलाकर सभी के हितार्थ आगे बढे। जब हम सब से परे ,मुस्लिमान केवल अपनी जाति एवं वर्ग को ही प्रमुखता देते हैं तो कितना पतन हो सकता है। मैं अपने सभी भाईयों कों निमंत्रण देता हूँ कि हम इस उदात लक्ष्य की ओर प्रतिस्पदित हों और चूकिं हम इस महान देश में रहने के कारण देश का निर्माण अलगाव के आधार पर नहीं कर सकते हमारा उत्थान या पतन एक साथ ही होगा। ," एनी बेसेन्ट के वक्तव्यों से भी यही स्पष्ट है कि भौतिक धरातल पर भारत कभी एक राष्ट्र नहीं रहा और एक नए रूप का निर्माण होना चाहिए। भारत कभी उत्तर से दक्षिण पूर्व से पश्चिम तक एक राष्ट्र नहीं रहा , बन रही है। ,पर वह आ रही है

इस प्रकार बींसवी शताब्दी के प्रारम्भ में अथवा उन्नसवीं शताब्दी के अंक में भी राजा राम मोहन राय के साथ ही एक ऐसी परिकल्पना की स्थापना हो गई जिससे हमारी मानसिकता बदली। जिस देश के लिए राष्ट्र का अर्थ भूगोल नहीं था देश का अर्थ इतिहास , बल्कि देश का एक व्यापक बोध था और उसके साथ साझेदारी का विचार रखने ,नहीं था उस पर राष्ट्रीयता की कृत्रिम परिकल्पना का ,वाले को अपना समझने का विवेक एवं धर्म था प्रभाव पडा।

भारतीय संस्कृतिः एक अवधारणा

भारतीय संस्कृति :

"संस्कृति " संस्कार मूलक होती है !' 'संस्कृति " वातावरण का मानव निर्मित भाग है ! निर्माण की शक्ति मानव को प्रकृति की देन है-संस्कृति, किन्तु संस्कृति स्वयं मानव का स्वतंत्र अविष्कार है संस्कृति की अपेक्षा समूह में अधिक स्पष्ट रूप से!लक्षित होती है ! समूह तथा उसकी संस्कृति सब्द क प्रयोग से साहित्य-जन, संगीत, नाटक, नित्य, चित्र ,स्थापन आदि कलाओ का सामूहिक रूप से बोध होता है इस कला समूह में मनुष्य समाज की वे ! गतिविधियाँ और क्रिया कलाप अलीभूत होते हैं जिनकी सार्थकता महज उनकी उपयोगिता मेः नही, वरन इस बात में भी है की वे साथ ही साथ आनंद के श्रोत भी है परिवर्तन और ! विकास का आयाम नामक पुस्तक में पूरनचंद्र जोशी की यह परिभाषा संस्कृति को स्पष्ट संदर्भानुसार संस्कृति को कभी ! करती है धर्म साहित्य क्रिया कलाप तक सीमित किया -दर्शन- जाता है औरकभी कला शिल्प समष्टि नृत्य! वाध तक सीमित हॉप जाता है- गीत-

संस्कृति बड़ा व्यापक शब्द है परिस्थिति !, वातावरण आदि अनेक कारणों से एक जाति से दूसरी जाति, एक देश से दूसरा देश , एक युग से दूसरा युग अलग पहचान बनाते है सभी ! संस्कृतियों की कतिपय मूल और बुनयादी धारणाएँ होती है जो शाश्वत मूल्य कहलाते है परन्तु संस्कृति निश्चित मात्रा नहीं हैं वह बाह्य प्रभावों से बदलती भी रहती है भारतीय ! संस्कृति, यूनानी संस्कृति, चीनी संस्कृति, मिस्र संस्कृति, प्राच्य संस्कृति, की मूल अवधारणाएँ हैं परन्तु आपसी प्रभाव भी हैं !

(भारतीय सनातन संस्कृति :विविध आयाम से उद्दत(

"संस्कृति का स्थूल इतिहास होता हैं और सूक्ष्म इतिहास भी स्थूल इतिहास की प्रितिनिधि तो संस्कृति की विविध संस्थाएँ हैं और सूक्ष्म इतिहास का प्रतिनिधित्व करते हैं - एक ओर उसके संत, महात्मा ओर अन्य आदर्श चरित्र नायक जो उसके मानों मर्यादाओं-मूल्यों- के धनीभूत प्रतिफलन प्रतीत होते हैं और दूसरी ओर उसका साहित्य और कला जिसमें संस्कृति की साधना के इतिहास क विविध चरण देखें जा सकते हैं !"

नूतत्वविज्ञान, समाजविज्ञान आदि में संस्कृति का प्रायः स्थूल इतिहास होता हैं !

संस्कृति के आधार पर विभिन्न धर्मो , सम्प्रदायों और आचारों का समन्वय किया जा सकता हैं!

बहुत स्थूल रूप से भारत नामक भूखण्ड में निवास करने वाली मानव जाति की संस्कृति ही- भारतीय संस्कृति की बहुत सरे तत्वों में समानता है जो उसमे एक ! भारतीय संस्कृति है सूत्रता उत्पनं करती हुै और विभिनंताएँ भी है संसार की दूसरी संस्कृतियों से अलग एवं ! ! विशिष्ट भी है"भारतीय जीवन व्यवस्था " पिछले छः हजार वर्षों से उतार चढ़ाव- और परिवर्तनों के बावजूद अपनी अस्मिता को अक्षुण्ण रखा यह सामासिक संस्कृति बनकर ! उभरी है जिसमें इस्लामी, ईसाई और मार्क्सवादी एवं अस्तित्वाद जैसी विचार धाराओं को भी- भारतीय संस्कृति का स्वरूप विवादग्रस्त और विरोधभासी भी रही है! समाहित करती आई है ! कोण के आधार पर इनमें दो धाराएँ है-दृष्टि !

१! सांप्रदायिक दृष्टिकोण अन्यंत संकीर्ण है .

२प्रगतिशील एवं समन्वयात्मक दृष्ट .िकोण व्यापक है !

भारतीय साहित्य के अंतर्गत भिनन् भाषाओं में...-

१ वैदिक ., तांत्रिक, शैव, शक्त, जैन, बौद्ध, इस्लाम, ईसाई जैसे संप्रदाय सांप्रदायिक दृष्टिकोण के समर्थक हैं जो अपने संप्रदाय से भिन्न सम्प्रदायों को प्रायः मौलिक धर्म का विकृत या बिगड़ा रूप समझते हैं !

२ प्रगतिशील एवं समन्वयात्मक दृष्टिकोण के समर्थक वैदिक परम्परा से संस्कृत . जैन- साहित्य के साथ बौद्ध, सूफी साहित्य तथा संतो के साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन , हाशिए की अशिक्षित जनता क अलिखित विश्वास और आचार विचारों के परीक्षण और भाषा- साथ पुरातत्व-क साथ संबंधी ऐतिहासिक तथा प्रगौतिहासिक साक्ष्यों के सांस्कृतिक मूल्यों एवं जीवन के आदर्शों का समर्तन करते हैं !

जिस रूप में भारतीय सास्कृतिक अस्मिता का प्रश्न आज हमारे सामने सम्मुख है, उससे यह नितांत आवश्यक हो जाता है कि भारतीय सेस्कृति के मूल स्वरूप की पहचान स्थापित की जाए।

बहुत स्थूल रूप में भारतीय संस्कृति का अर्थ भारत नामक भूखण्ड से निवास करती आयी मानव-जाति की उस संस्कृति से है जो बहुत-सी समानताओं के कारण एक सूत्र में बँधी हुई है। भारतीय संस्कृति की बहुत-सी बातें ऐसी हैं जो संसार के दूसरे भागों में रहने वाले मानव समूहों से अलग एवं विशिष्ट हैं। भारतीय संस्कृति में कुछ ऐसे सिद्धांतों और विचारों का प्रधान्य है जिनके फलस्वरूप एक विशेष प्रकार की जीवन -व्यवस्था विकसित हुई है जिसे "भारतीय जीवन-व्यवस्था" की संज्ञा प्रदान की जा सकती है। पिछले छः हजार वर्षो में भारतीय संस्कृति में उतार-चढ़ाव और कुछ ऊपरी परिवर्तनों के बावजूद बुनियादी एकता विद्यमान रही है। इसलिए यह सोचना गलत न होगा कि भारतीय संस्कृति की रूप-रेखा के मूल में ऐसी धारणाएँ हैं जिनमें कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है।

पर यह भी सत्य है कि भारतीय संस्कृति में परिवर्तन की प्रक्रिया भी आरंभ से जारी रही है। समय समय पर उसने ऐतिहासिक कारणों से बाहरी प्रभावों को भी स्वीकारा है और- उन्हें आत्मसात् भी किया है। इसीलिए उसे प्रायः एक सामासिक संस्कृति की संज्ञा प्रदान की जाती रही है। पर भारतीय संस्कृति को सामासिक संस्कृति मानने पर कई लोग आपति भी उठाते हैं। उनके अनुसार सामासिक संस्कृति के पक्षधरों से आशंका यह है कि उनके हाथों भारतीय संस्कृति के मूल त्तव ईसाई और तथाकथित सेक्युलर वादी तत्वों के नीचे ,इस्लामी , दबकर विकृत और विनिष्टन हो जाए। किन्तु यह दृष्टिकोण आज के भारतीय संदर्भ में संकीर्ण दृष्टीकोण ही कहलाएगा।

भारतीय संस्कृति स्वभावतः सदा से प्रगतिशील रही है। इसमें अपने जीवन की जो अबाध धारा बह रही है उसके द्वारा ही भविष्य के देशीय या अन्तराष्ट्रीय मानवता के हित , अपनी अनन्त , के आन्दोलनों का स्वागत करते हुएप्राचीन परम्परा की रक्षा करते हुए आगे बढती जाएगी। ऐसी भारतीय संस्कृति में ही हमारी आस्था है। संसकृति के आधार पर विभिन्न धर्मों संप्रदायों और आचारों का समन्वय किया जा सकता है। संस्कृति का स्वरूप , विवादग्रस्त बना गया है। इस विषय में देश के विचारकों की प्रायः परस्पर विरूद्ध या विभिन्न दृष्टियाँ दिखाई देती हैं।

साम्प्रदायिक दृष्टकोण

भारतीय संस्कृति के विषय में अत्यंत संकीर्ण दृष्टि उन लोगों की है जो परम्परागत अपने अपने धर्म या सम्प्रदाय को ही "भारतीय संस्कृति" समझते हैं। लगभग दो ढाई सहस्र- वर्षों से इन्हीं संप्रदायवादियों का बोलबाला भारत में रहा है।

सहस्रों वर्ष गुजर जाने पर भी भारतवर्ष की राजनीतिक तथा सामाजिक परिस्थितियों में इन संप्रदायवादियों का काफी हाथ रहा है।

अपने शिव आदि के , अपने संप्रदाय तथा परंपरा को ही सृष्टि के प्रारम्भ से ब्रह्मा- द्वारा प्रायः प्रवर्तित कहने वाले तथा अपने भिन्न संप्रदायों को प्रायः अपने से हीन कहने वाले इन लोगों के मत में तो ,"विशुद्ध" भारतीय संस्कृति का आधार उनके ही संप्रदाय के प्रारंभिक रूप में ढूँढना चाहिए। वैदिक बौद्ध जैसे संप्रदाय प्रायः ,जैन ,शाक्त ,शैव ,तांत्रिक , इसी कोटि में आ जाते हैं। इस दृष्टकोण के समर्थक अपने अपने संप्रदाय से अतंतरभावी या- भिन्न संप्रदायों को प्रायः अपने मौलिक धर्म का विकृत या बिगडा हुआ रूप ही समझते हैं।

प्रगतिशील एवं समन्वयात्मक दृष्टिकोण

भारतीय संसकृतिक को उसके व्यापक अर्थ में इस दृष्टकोण के समर्थकों के द्वारा स्वीकार किया जाज हैं। उनके अनुसार उसकों स्वभावतः प्रगतिशील तथा समन्वयात्मक मानते हुए जैन साहित्य तथा सन्तों के- वैदिक परंपरा के संस्कृत साहित्य के साथ बौद्ध , विचारों के - मूक जनता के अलिखित विश्वास और आचार , साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन परीक्षण और भाषाके साथ संबंधी ऐतिहासिक तथा प्रागैतिहासिक साक्ष्यों के-साथ पुरातत्व- दृष्टि से भारतीय संस्कृति के आधारों की पुष्टि हो सकेगी।-अनुशीलन के द्वारा समष्यि

भारतीय विचारधाराः एक विहंगावलोकन

संस्कति एवं दर्शन का सीधा और प्रत्यक्ष संबंध होता है। संस्कृत (विचारधारा)ि मनुष्य की वृति है और मनुष्य जो कुछ है वह उसकी विश्वदृष्टि और दर्शन का परिणाम , होता है। भारतीय संस्कृति के संबंध में एक उल्लेखनीय बाद यह भी है कि यहाँ दर्शन और धर्म अभिन्न रहे हैं। प्रत्येक दार्शनिक यहाँ पर धार्मिक नेता रहा है और प्रत्येक धार्मिक नेता व संत एक विशिष्ट दार्शनिक विचारधार का प्रवर्तक -उन्नायक या समर्थक था। कारण है कि भारतीय धर्म प्रायः आचार सहिता ज्यादा रहा है। भारतीय धर्म-संहिता की अपेक्षा विचार- व्याख्यायित- दृष्टि के रूप में जब परिभाषित- विधान की अपेक्षा एक जीवन- को एक जीवन किया जाता है तो उसके मूल में यही मान्यता विद्यमान है। जीवन और नैतिक आचरण से भिन्न दर्शन का यहाँ पर और कोई प्रयोजन नहीं माना गया है।यही कारण है कि यहाँ पर प्रत्योक दार्शनिक विचारधारा का लक्ष्य मोक्ष या मुक्ति ही है जैसा कि भारतीय धर्म का भी है। विचार और आचार की यह एकता भारतीय संस्कृति की एक विशिष्ट विशेषता है।

भारतीय विचारधारा एवं संस्कृति बुनियादी तौर पर वैदिक ही है। जैन - बौद्ध धर्म- जो अवैदिक माने गये हैं भी औपनिषदिक विचारधारा से ही प्रेरणा प्राप्त करते हैं। उन धर्मों में - प्रतिपादित अहिंसा का सिद्धात वैदिक आत्मवादी विचारधारा का सीधा और व्यावहारिक परिणाम ही है। युगानुरूप भारतीय विचारधारा में परिवर्तन होते गये हैं नये प्रभावो को ग्रहण , पर फिर भी उसमें एक बुनियादी एकता एवं सातत्य का भाव विद्यमान , किया जाता रहा है डेढ हजार वर्षो के दौ- यह शायद जरूर है कि पिछले हजार , रहे हैं। हाँरान यहाँ पर किसी मौलिक एवं साहसपूर्ण विचारधारा या दर्शन का प्रतिपादन - विकास नहीं हुआ है। इसलिए इस युग को भारतीय विचारधारा के इतिहास में निस्तेजता का युग माना गया है और यह संयोग मात्र नहीं है कि यह युग भारतीय इतिहास में पराजय पराभव एवं पतन व दासता का- युग रहा है। आज की हमारी जातीस अस्मिताहीनता के मूल में भी यही ऐतिहासिक वास्तविकता विद्यमान हैपर उसकी बात आगे। संप्रति भारतीय दार्शनिक विचारधारा की उन , मूलभूत विशेषताओं का आकलन यहाँ पर किया जा रहा है जिनसे हमारा अतीत निर्मित हुआ है और जो हमारे वर्तमान व भविष्य को रूप देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायेगी।

भारतीय दर्शनों की सामान्य विशेषताएँ

भारत के दार्शनिक सम्प्रदायों को साधारणतया आस्तिक और नास्तक वर्गों में रखा गया है। वेद को प्रमाणिक मानने वाले दर्शन को "आस्तिक" तथा वेद को अप्रमाणिक मानने वाले दर्शन को "नास्तिक" कहा जाता है। आस्तिक दर्शन छः हैः (3) वैशेषिक (2) न्याय (1) - वेदांत। (6) मीमांसा और (5) योग (4) सांख्य

नास्तिक दर्शनों के अंतर्गत जैन दर्शनों का समावेश (3) बौद्ध और (2) चार्वाक (1) साम्य , किया जाता है। इन दर्शनों में आपसी विभिन्नता होते हुए भी क क्रम हैहै। इनकी विशेषताएँ संक्षेप में इस प्रकार हैं-

दुःखमय संसार

प्रायः सभी दर्शनों मों संसार को मृत्यु बुढ़पा आदि दुःखों ,दुःखमय माना गया है। रोग , ,शंकर ,वैशेषिक ,न्याय ,योग , को बुद्ध द्वारा प्रथम आर्यसत्य बताया गया और उससे सांख्य जैन आदि सभी दर्शन सहम ,रामानुजत हैं। परन्तु ये निराशावादी कतई नहीं हैं क्योंकि ये दर्शन "कम से पलायन" का उपदेश नहीं देते बल्कि कर्म को ही आशा का आधार मानते हैं। , विमुखता का उपदेश किसी भी दर्शन में नहीं मिलता। भारतीय दर्शन उस अध्यात्म का-कर्म समर्थन करता है जिससे मोक्ष प्राप्त हो । मोक्ष एक ऐसी अवस्था है जहाँ दुखों का पूर्णतया

अभआव है जो पूर्ण आनन्दमय अवस्था है। इसे प्राप्त करने के लिए बुद्ध ने ,"अष्टांगिक मार्ग" का प्रतिपादन किया है (4) सम्यक् वाक् (3) सम्यक् संकल्प (2) सम्यकृ दृष्टि (1) - सम्यक् व् (6) सम्यक् आजीविका (5) सम्यक् कर्मान्तयायाम (8) सम्यक् स्मृति और (7) सम्यक् समाधि मीमांसा के अनुसार मानव"कर्म" के द्वारा मोक्षवस्था को अपना सकता है। अर्थात कर्म उन्मुख जीवन का ही उपदेश मिलता है।

संक्षेप में भारतीय दर्शन में निराशावाद केवल आरम्भ है अन्त नहीं दर्शन का आरंभ , दु ,दुःख से होता है:ख से छुटकारा पाने का उचित मार्ग दर्शन ही भारतीय दर्शन है।

आत्मा की सत्ता

चार्वर को छोडक्कर यहाँ का प्रत्येक दार्शनिक आत्मा की सत्ता में विश्वास करता है। शंकर ने आत्मा को "सच्चिदानन्दन"सत) +चित्+आनंद कहा है। आत्मा न ज्ञाता है और न (ज्ञान का विषय है। जहाँ तक आत्मा की संख्या का सम्बध है शंकर को छोडकर सभी , वैशेषिक दो प्रकार की आत्माओं को मानते हैं।-दार्शनिकों ने आत्मा को अनेक माना है। न्याय

कर्म सिद्धांत

भारतीय दर्शन का यह सिद्धांत सर्वाधिक भ्रमपूर्ण विषयों को जन्म देता रहा है। प्रायः भारत के दर्शन को भाग्यवादी कहा जाता है परन्तु चार्वक को छोडकर भारत के सभी दर्शन चाहे वे आस्तक हों अथवा नास्तक कर्म के नियम को मान्यता प्रदान करते हैं। कर्म सिद्धांत , में विश्वास करना भारतीय विचारधारा के अध्यात्मवाद का सबूत है। कर्म सिद्धांत का अर्थ है जैसे"हम बोते हैं वैस ही हम काटते हैं।" इस नियम के अनुकुल शुभ कर्मों का फल शुभ तथा अशुभ कर्मों का फल अशुभ होता है। इसके अनुसार "कृत प्रणाश" अर्थात किए हुए कर्मों का फल नष्ट नहीं होता है तथा "अकृतम्युपगम्" अर्थात् बिना किए हुए करमों के फल भी नहीं प्राप्त होते हैं। सुख और दुःख क्रमशः शुभ और अशुभ कर्मों के अनिवार्य फल माने गये हैं। इस प्रकार कर्म सिद्धात ,"कारण नियम" है जो नैतिकता के क्षेत्र में निहित व्यवस्था की व्याख्या "कारण-नियम" करता है उसी प्रकार , उसी प्रकार नैतिक क्षेत्र में काम करता है , - नैतिक क्षेत्र में निहित व्यवस्था की व्याख्या कर्म सिद्धांत करता है। अतीत वर्तमान और , कार्य श्रृंखला में बांधा गया है।-भविष्य जीवनों को कारण

प्रत्येक मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता स्वंय होता है। कर्म - सिद्धान्त सर्वप्रथम बीज के रूप में "वेद दर्शन" में सन्निहित मिलता है। वैदिक काल के ऋषियों में नैतिक व्यवस्था के

प्रति श्रद्धा की भावना थी। वे नैतिक व्यवस्था को "ऋत्" कहते थे जिसका अर्थ होता है "जगत की व्यस्था"। "जगत की व्यवस्था" के अन्दर नैतिक व्यवस्थआ भई समाविष्ट थी। यह ऋत का विचार उपनिषद् दर्शन में कर्मवाद का रूप ले लेता है। विश्व की समस्त वस्तुएँ यहाँ तक , इस नियम से प्रभावित होते हैं। ,की परमाणु भी

कर्म सिद्धांत को ठीक प्रकार से न समझने के कारण कई बार समाज में संवेदनशून्यता का जन्म होता है। किसी असहाय या पीड़ित की सेवा सहायता इसलिए नहीं- की जाती है कि उसका वर्तमान उसके पूर्ववर्ती कर्मों का फल माना जाता है। परन्तु यह पलायन है। ऐसी अवधारणा ही भाग्यवाद को जन्म देती हैं।

परन्तु जहाँ तक वर्तमान जीवन का सम्बध है वहाँ कर्म - सिद्धांत भाग्यवाद को प्रश्रय दे सकता है क्योंकि वर्तमान अतीत का फल है। परन्तु भविष्य जीवन वर्तमान शुभ कर्मों के आधार पर ही निर्मित होता है।

कर्म सिद्धांत के अनुसार मानव के शुभ या अशुभ सभी कर्मों पर निर्णय दिया जाता , है। अशुभ कर्मों का अनिवार्य अशुभ परिणाम मानव को बुरे कर्मों से दूर रखता है मानव का , अपने कर्मों के लिए स्वयं को उत्तरदायी मानना , अन्तःकरण अशुभ कर्म का विरोध करता है सिखाता है। यह मानव में आशा का संचार करता है कि प्रत्येक व्यक्ति स्वयं अपने भाग्य का निर्माता है।

पुनर्जन्म

चार्वाक् को छोड़कर सभी दार्शनिक - वैदिक तथा अवैदिक पुनर्जन्म अथवा जन्मान्तरवाद में विश्वास करते हैं। पुनर्जन्म का विचार कर्मवाद के सिद्धांत तथा आत्मा की अमरता से ही प्रस्फुटित होता है। आत्मा नित्य एवं अविनाशी होने के कारण एक शरीर से दूसरे शरीर मेंप्रवेश करती है। मृत्यु का अर्थ ,शरीर की मृत्यु के पश्चात् , शरीर का अन्त है , आत्मा का नहीं। इस प्रकार शरीर के विनाश के बाद आत्मा का दूसरा शरीर धारण करना ही पुनर्जन्म है। चार्वक आत्मा की अमरता में विश्वास नहीं करता है। उसके अनुसार शरीर की क्योंकि दोनों एक दूसरे के अभिन् , मृत्यु के पश्चात् आत्मा का भी नाश हो जाता हैन हैं। इसलिए वह पुनर्जन्म के विचार में आस्था नहीं रखता।

वैदिक काल का पुनर्जन्म -विचार उपनिषद में पूर्ण रूप से विकसित हुआ है। उपनिषद में पुनर्जन्म की व्याख्य उपमानों के आधआर पर की गई है। इनमें से निम्नलिखिखित उपमा

का उल्लेख करना आवश्यक है। अन्न की तरह मानव का नाश होता है और अन्न की तरह उनका पुनःपुनर्जन्म भी होता है।

गीता में कहा गया है कि -"जिस प्रकार मानव की आत्मा भिन्न भिन्न अवस्थाओं- वृद्धावस्था से गुजरती है उसी प्रकार यह एक शरीर से दूसरे ,युवावस्था ,जैसे शैशवावस्था ,से शरीर में प्रवेश करती है।" जिस प्रकार मनुष्य पुराने वस्त्र के जीर्ण हो जाने पर नवीन वस्त्र शरीर को धारण करता है उसी प्रकार आत्मा जर्जर एवं वृद्ध शरीर को छोडकर नवीन शरीर धारण करती है।"

पुनर्जन्म की आलोचना यह कहकर की जाती है कि यह अवैज्ञानिक है। इस सिद्धांत का व्यावहारिक पहलू यह है कि यह मानव को कुकरेम करने से रोकता है क्योंकि मानव के अच्छे कर्म ही अगले जन्म में उसे शुभ फल देंगे। इस रूप में यह आशा का संचार करता है।

व्यवहारिक पक्ष

भारत में दर्शन का जीवन से गहरा सम्बध रखता है। दर्शन का उद्देश्य सिर्फ मानसिक कौतुहल की निवृति नहीं है बल्कि जीवन ,की समस्योओं को सुलझाना है। इस प्रकार भारत में दर्शन को जीवन का अभिन्न अंग कहा गया है। जीवन से अलग दर्शन की कल्पना भी यहाँ सम्भव नहीं माना गया है। प्रो हरियान्ना ने ठीक ही कहा है कि ."दर्शन सिर्फ सोचने की पद्धति न होकर जीवन पद्धति है।" चार्ल्स मूर और डॉरा .धाकृष्ण ने भी प्रो . - हरियान्ना के विचार की पुष्टि इन शब्दों नें की है"भारत में दर्शन जीवन के लिए है।"

दर्शन को जीवन का अंग कहने का कारण यह है कि यहाँ दर्शन का विकास विश्व के दुःखों को दूर करने के उद्देश्य से हुआ है। जीवन के दुखों के समाधान के लिए दर्शन को अपनाया है। अतः दर्शन 'साधना" है जबकि साध्य है दुःखों से निवृति।

व्यवहारिक - पक्ष का प्रधानता के कारण प्रत्येक दार्शनिक अपने दर्शन के आरंभ में यह बतला देता है कि उसके दर्शन से पुरूषार्थ चार प्रकार के हैं-

(1) धर्म (2) ,अर्थ मोक्ष। (4) काम और (3)

इन चारों में भी चरम पुरूषार्थ मोक्ष ही माना गया है। चार्वाक को छोडकर सभी दर्शनों में मोक्ष को जीवन का चरम लक्ष्य मैनै गया है। भौतिकवादी दर्शन होने के कारण चार्वाक दर्शन में अर्थ और काम को ही पुरूषार्थ माना जाता है।

सभी दर्शनों में मोक्ष की धारणा भिन्न् भिन्न रहने के बावजूद मोक्ष की सामान्य-धारणा में सभी दर्शन की आस्था है। भारतीय दर्शन में मोक्ष की अत्याधिक प्रधानता के कारण इसे मोक्षदर्शन भी कहा जाता है। -

मोक्ष का अर्थ दुःख विनाश होता है। सभी दर्शन में मोक्ष का यह सामान्य विचार - बल्कि , माना गया है। यहाँ के दार्शनिक मोक्ष के लिए सिर्फ स्वरूप की ही चर्चा नहीं करते मोक्ष के लिए प्रयत्नशील रहते हैं।

भारतीय दर्शन न तो नीति शास्त्र है और न ही "धर्म" अपितु जीवन पद्धति है।

भारतीय साहित्य

भारतीय साहित्य का अर्थ हैं भारत देश का साहित्य। साहित्य दो प्रकार का होता है - लिखित और मौखिक। मौखिक साहित्य लोक गीतों तथा लोककथाओं में मिलता है।

भारतीय साहित्य को निम्नलिखित बिन्दुओं द्वारा समझा जा सकता है -

1. राष्ट्र
2. भारतीय साहित्य की अवधारणा
3. अनुवाद
4. तुलनात्मक अध्ययन

भारतीय साहित्य की अवधारणा -

1. पहली अवधारणा -

यह अवधारणा भारत शब्द से उत्पन्न होता है। भारत दो शब्दों के योग से बना है - भा+रत। 'भा' का अर्थ है प्रकाश और 'रत' का अर्थ है रहने - वाला। इस आधार पर भारतीय साहित्य का अर्थ है ज्ञान का प्रकाश देने वाली रचनाएँ -, इस परिभाषा के अंतर्गत वेद - बेताल की कथाएँ-विक्रम ,गाथा सप्तशती ,हितोपदेश ,पंचतंत्र ,रामायण ,महाभारत ,उपनिषद आदि रचनाएँ आती हैं।

2. दूसरी अवधारणा -

विभिन्न भाषाओ में उपलब्ध साहित्यक एकता ही दूसरी अवधारणा है।

3. तीसरी अवधारणा-

भारतीय साहित्य की आध्यात्मिकता ही तासरी अवधारणा है। वैदिक साहित्य से लेकर सिद्धइसाई धर्म भारतीय साहित्य के अभिन्न भाग हैं। ,भक्ति एवं दर्शन इस्लाम ,जैन-नाथ-

4. चौथी अवधारणा-

भारत में अनेक भाषाएँ हैं। इन भाषाओं के साहित्य का इतिहास डॉ नगेन्द्र ने लिखा . , पूर्वी भारत की बंगाली ,कन्नड साहित्य ,मलयालम ,तमिल , हैं। दक्षिण भारत की तेलुगु , गुजराती आदि उतर की हिन्दी ,पश्चिम की मराठी ,मणिपुरी आदि साहित्य ,असमी ,उडिया राजस्थानी आदि भाषाओं के साहित्य का इतिहास भारत ,कशमीरी ,पंजाबीीय साहित्य के अध्ययन का महत्वपूर्ण पक्ष है।

5. पाँचवी अवधारणा- .

भारतीय प्रायद्वीप में आर्य मुगलों का सम्मिश्रण है। ,पठान ,हूण ,शक ,चीन ,द्रविड , मध्य एशिया से बांग्लादेश तक अनेक समानताएँ मिलती हैं। इस प्रकार भूगोल एवं संस्कृति भारतीय साहित्य की अवधारणा के अंश हैं।

6. छठी अवधारणा -

शास्त्रीयता के आधार पर संस्कृत फारसी का साहित्य ही भारतीय साहित्य का ,अरबी , मूल है।

7. सातवी अवधारणा-

काव्य साथ आधुनिक युग की नूतन विधाएँ जैसे-नाटक और कथा साहित्य के साथ , नृत्य जै , साथ संगीत- श्रव्य माध्यम के साथ -दृश्य , समाचार पत्र ,निबंधसी कलाएँ भी भारतीय साहित्य के अनिवार्य अंग बन गए हैं। आधुनिक युग में इंडियन इंग्लिश लेखन भी भारतीय साहित्य में जुड़ गया है।

(ii)

भारतीय साहित्य की अध्ययन की समस्याएः-

उद्देश्य-

इस इकाई में भारतीय साहित्य के अध्ययन की समस्याओं पर विचार कर सकेंगे। निम्नलिखित बिन्दुओं को समझ सकेंगे।

- भारतीय साहित्य की विशालता।
- भारतीय साहित्य की संकल्पना की संभावना।
- बहुभाषी समाज।
- सांस्कृतिक बहुलता
- बहु-जातीयता
- राष्ट्रीयता एवं भारतीयता
- तुलनात्मक अध्ययन
- अनुवाद, भाषांतर, रूपांतर
- भाषा समन्वय
- शिक्षण-अध्ययन एवं अध्यापन की दशा और दिशा

भारतीय साहित्य की अवधारणा को मूर्त रूप देने का प्रयास लगभग उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द से आरंभ हुई। इसका नियमित अध्ययन और अध्यापन 20 वीं सदी के उत्तरार्द से होने लगा। आधुनिक काल में 'राष्ट्र' की नूतन संकल्पना उभर कर आयी। इस अमूर्त धारणा को मूर्त रूप देने के लिए अनेक परिभाषाएँ की गई जिन पर हम पहले ही विचार कर चुके हैं।

इसी संकल्पना के तहत भारतीयता को निरूपित करने के लिए 'भारतीय साहित्य' की संकल्पना भी साकार होने लगी।

परंतु राष्ट्रवाद के भव्य महाख्यान के बीच ही 'भारतीय साहित्य' की संपल्पना का जन्म हुआ है। अंग्रेजो की पराधीनता से मुक्ति प्राप्त करने के ले भारतीय प्रायद्विप में फैले विभिन्न प्रांतो को एकसूत्र में बाँधने के लिए भारत नामक राष्ट्र का जन्म हुआ। स्वतंत्रता, प्रजातंत्र और राष्ट्रीयता के लिए क्रंतिकारी संघर्ष और अहिंसात्मक सत्याग्रह किए गए। आधुनिकता के लिए भारत में-

- उपनिवेशवाद से उपजे पिछड़ेपन से जूझना पड़ा।
- सामंती संस्कारों का अंत नहीं हुआ।
- पूँजीवादी व्यवस्था केऔद्योगिकर विकास की ओर प्रवृत हुआ।
- बिखरते गाँव और महानगरों का अनियोजनत विस्तार हुआ।

वस्तुतः अनेक राज्यों वाले एक संघ देश के रुप में भारत साकार हुआ जिसमें अनेक दलों से युक्त प्रजातंत्र पनपा। यह देश पौराणिक, मध्यकालीन, सामंतकालीन, आधुनिककालीन और भूमंडलीकरण की पूँजीवादी संस्कृति का मिश्रित परिणाम है।

इस प्रकार इस भारत नामक भौगोलिक इकाई के भीतर अनेक भाषाओं में रचे गए साहित्य को भारतीय साहित्य के अंतर्गत संकलित करना अत्यंत कठिन है। क्योंकि भारतीय साहित्य भी भारत के अनुरूप बहुभाषिक, बहुधार्मिक, बहुसांस्कृतिक है। जिसकी चेतना को समझने के लिए परिभाषा पर्याप्त नहीं है बल्कि उसे महसूस करने की क्षमता आवश्यक है।

इस संदर्भ में प्रथम ज्ञानपीठ पुरस्कार पाने वाले केरल के साहित्यकार जी. शंकर कुरूप का कथन अत्यंत प्रासंगिक है-

"भारतीय साहित्य परंपरा से मेरा मतलब कुछक संकेतों एवं सिद्धांतों से नहीं । प्रत्येक शिशिर के बीत जाने पर आगामी बसंत के आतप प्रकाश को आत्मसात करने की प्रेरणा देते हुए नवीन विकास का आरंभ करने वाले वृक्षों का आमूलगत प्रसूत होने वाला जीवरस है।"

इस प्रकार भारतीय साहित्य विस्तृत है और उसे प्रगुणात्मक माना गया है और राष्ट्रकवि रामधारीसिंह दिनकर की पंकतियों में परिलक्षित होता है-

भारत नहीं स्थान का वाचक

गुण-विशेष नर का है

एक देश का नहीं

शील वह भूमंडल भर का है।

परंतु अनेक पश्चिमी विद्वानोंका मत इससे भिन्न भी है। पश्चिम में बसे प्रवासी भारतीय विद्वान नीहार रंजन रे भी भारतीय साहित्य की आवधारणा से असहमत हैं। उनके मतानुसार भारत के भाषा-वैविध्य की दृष्टि से साहित्य की अस्मिता उसकी भाषा में ही

निहित है। इसी प्रकार कार्लटन कॉर्लटन कॉलेज के अर्नाब चकलादर अपने लेख 'लैंग्वेज, नेशन ड द क्वश्चन ऑफ इंडियनलिटरेचर' में लिखते हैं कि 'भारतीय साहित्य के सर्वज्ञत होने का दावा करना बहुत कठिन है'। दूसरे शब्दों में भारतीय साहित्य का अध्ययन हमेशा आंशिक ही होता है क्योंकि अनेक भाषाओं का ज्ञान कम लोगों को होता है। परंतु समस्यों भारतीय साहित्य के अध्ययन के महत्वपूर्ण अंग है।

भारतीय साहित्य का अर्थ-

डॉ. इंद्रनाथ चौधरी के अनुसार भारतीय साहित्य के तीन अंग है-

1. संस्कृत साहित्य
2. भारतीयों द्वारा अंग्रेजीं भाषा में लिखा साहित्य
3. विभिन्न प्रांतिय भाषाओं जैसे हिन्दी, बंगला, मराठी, तमिल आदि में लिखा गया साहित्य जिनमें विषय एवं भागवत एकसूत्रता स्पष्ट दिखाई पड़ती है।

वी.के. गोकाक के अनुसार-

"साहित्य की शैली, कथ्य, पृष्ठभूमि, बिंबविधान, काव्यरुप, संगीत तथा जीवन दर्शन सब मिलकर एक अभिन्न तत्व के रूप में भारतीय साहित्य को भारतीयता में प्रकट करते हैं।"

डॉ. राधाकृष्णन का मानना था कि - "भारतीय वाड्मय एक है जो विविध भाषाओं में रचा गया है।"

उपनिवेशवाद और आधुनिकता द्वारा शिक्षा संस्थनों की स्थपना से पहले

भारतीय विद्वान डॉ. सत्यभूषण वर्मा भी इसी प्राकार का मत व्यक्त करते हैः-

"भारतीय साहित्य की परिकल्पना अभी हमसे दूर है। भारतीय साहित्य के नाम से जो ग्रंथ अकादमियों आदि द्वारा प्रकाशित होते हैं, उनमें भी अलग-अलग भाषा साहित्यों की चर्चा है, परंतु संपूर्ण भारतीय साहित्य की अंतर्धाराओं पर अधिक विचार नहीं किया गया है। भारतीय साहित्य की परिकल्पना में सबसे बड़ी बाधा अन्य साहित्यों की सीधी जानकारी की कमी है।"

"डॉ. रामविलास शर्मा प्राचीन संस्कृत साहित्य, पाली या अपभ्रंश साहित्य को भारतीय साहित्य नहीं मानते हैं। आधुनिक भारतीय भाषाओं में रचित साहित्य को भी भारतीय कहना कहना वे युक्तिसंगत नहीं समझते। उनका कहना है कि अंग्रेजों से स्वाधीनता पाने के भारतीय जनता ने एकता कायम रखी थी, इस तरह भारतीय साहित्य के इतिहास का अर्थ होगा अंग्रेजी और संस्कृत में भारतवासियों द्वारा लिखे हुए साहित्य का इतिहास। इसमें वह संस्कृत साहित्य भी सम्मिलित किया जा सकता है, जो 20 वीं शती में, विशेषतः उसके उत्तरार्द में रचा गया है। इसके अतिरिक्त और किसी साहित्य को भारतीय साहित्य नहीं कहा जा सकता।"

इस प्रकार परस्पर विरोधी परिभाषाएँ भारतीय साहित्य की संकल्पना को धुँधला करती है।

इस प्रकार भारतीय साहित्य के अध्ययन में अनेक समस्यएँ हैं-

1. अनेक भाषाएँ
2. विवध विधाओं में हजारों रचनाएँ
3. वर्गीकरण में समानता की सीमाएँ
4. अनुवाद की समस्याएँ
5. तुलनात्मक अध्ययन की विपुलता

शिक्षण की दशा और दिशा-

विश्वविद्यालयों में एम. ए. के पाठ्यक्रम में एक पर्ते के रुप में इसे पढ़ाया जाता है। स्कूल के स्तर पर ही इसकी नींव रखी जानी चाहिए। भूमंडलीकरण, कंप्यूटर और इंटरनेट आदि गया है। रोजगारोन्मुखी पाठ्यक्रम विद्यार्थयों कों आकर्षित कर सकेगा। भारतीय साहित्य की विशालता अध्यापन को सीमित कर देती है। कुशल अनुवादकों की कमी है। श्रेष्ट उनुवादकों को लक्ष्य एवं स्त्रोत भाषा के साथ-साथ समाज, संस्कृति, रीति-रिवाज, बोल-चाल के व्यवहारिक भाषा ज्ञान का भी उचित प्रशिक्षण देने के ले कार्यशालाएँ तथा यात्राओं द्वारा विद्यार्थियों के पाठ्यक्रमों में सम्मिलित किया जाना चाहिए। भारतीय साहित्य के अध्ययन के लिए स्वतंत्र विभाग की स्थापना ही इस महती कार्य को साकार कर सकती है।

भाषांतरण एवं रूपांतरण-

भाषांतरण एवं रूपांतरण का सबसे उत्कृष्ट उदाहरण रामायण और महाभारत का है।

इनका भाषांतरण एवं रूपांतरण आसेतु हिमाचल मिलता है। देशभर की भाषाओं में रामायण रचा गया है। बांग्ला में कृतिवास रामायण, उडिया में विलंका रामायण, तमिल में कम्ब रामायण, कन्नड में तोरने रामायण आदि । इसी प्रकार महाभारत भी अनेक भाषाओं में रचा गया है।

इन पर आधारित महाकाव्य, खंडकाव्य, नाटक, लोकगीत उपलब्ध हैं।

फारसी की रचनाएँ जेसे अरबी राते (अरे बियन नाइट्स) सिंदबाद जहाजी, अलीबाबा चालीस चोर अत्यंत लोकप्रिय हैं। अरबी-फारसी भारतीय जीवन का अंतर्भाग है।

उमर खाय्यम की रुबाइयाँ, गुलिस्ताँ बोस्ताँ, खलिल जिब्रान की लघुकथाएँ भी भारतीय साहित्य में अंतर्निहित है।

धर्म, दर्शन और विभिन्न संप्रदायों से संबंधित साहित्य का विशाल भंडार भारतीय जनता के दैनंदिन जीवन में समाहित है। संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश का विपुल साहित्य की दीर्ध परंपरा निरंतर प्रवाहित होती आ रही है। संस्कृत के कालिदास, बाणभट्ट, भास, अश्वघोष, भवभूति, जयदेव, राजशेखर जैसे रचनाकारों का रचनाएँ धूमिल नहीं हुई है। सिद्ध, नाथ, जैन, नाथ परंपराएँ जीवंत हैं। शैव, वैष्णव, शाक्त संप्रदायों के विचारों ने गहरी छाप छोडी है। द्वैत, अद्वैत, द्वैताद्त, न्याय, सांख्य, वैशेषिक, चार्वाक दर्शन के विद्वान देशभर में व्याप्त हैं।

शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, वल्लभाचार्य, मधवाचार्य, निम्बार्क आदि की अनुगूँज अनेक भाषआओं और बोलियों में मिलती है। भक्ति-युग में भाषा का आदान-प्रदान महत्वपूर्ण है। केरल में जन्मे शंकराचार्य, ने कश्मीर तक यात्रा की।

मुगल शासनकाल भाषा के आदान-प्रदान की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण था। दक्षिण में आज भी दक्खिनी भाषा का प्रचलन है जिसमें साहित्य भी समृद्ध है। इसी प्रकार सूफी काव्य परंपरा आज भी जनमानस में बसी हुई है। उर्दू साहित्य की समृद्ध और शेरो -शायरी और गज़ले भारतीय साहित्य का अभिन्न अंग हैं। यह सब भाषांतरण एवं रुपांतरण से ही संभव हुआ है और आज भी हो रहा है।

भारतीय साहित्य को सम्यक रूप से संकलित करने में अनुवाद महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। अनवाद की प्राचीन परंपरा रही है परंतु 21 वीं सदी को अनुवाद युग कहा जाता है। इस कार्य में व्यक्तिगत ही नहीं बल्कि संस्थाओं का भी योगदान है। इनमें प्रमुख संस्थाएँ निम्नलिखित हैं-

- भारतीय ज्ञनपीठ न्यास (बनारस, 1944 में स्थापित)
- केन्द्रीय साहित्य अकादभी (1954, दिल्ली)
- के.के.बिडला फाउंडेशन (1991, दिल्ली)
- जोशुवा फाउंडेशन (तेलुगु कवि मुर्रम जोशुवा की स्मृति में स्थापित)
- भारतीय भाषा परिषद् (कोलकता)
- कथा (दिल्ली)

इन अकादमियों ने पुरस्कार, अनुवाद, प्रकाशन, पत्रिकाओ एवं संगोष्ठियों के माध्यम से भारतीय साहित्य के प्रति समर्पित रहे हैं।

हिन्दी साहित्य के आधुनिक युग का आरंभ 19 वीं सदी के उत्तरार्द से होता है। यह भारतेन्दु कहलता है। भारतेन्दु युगीन साहित्यकोरों ने अनुवाद का बृहत कार्य का आरंभ किया थ । राजा लक्ष्मण सिंह ने संस्कृत के 'रघुवंश' और 'मेघदूत काव्य' का अनुवाद किया था। इसी प्रकार 'ऋतुसंहार', 'कुमार संभव', 'नारद भक्ति-सूत्र' आदि अनूदित कृतियाँ मिलती हैं।

संस्कृत, बंगला से अनूदित नाटकों की बहुलता है। उत्तर रामचरित, अभिज्ञान शआकंतलम, प्रबोध चंद्रोदय, मृच्छकटिक, रत्नावली, वेणीसंहार आदि संस्कृत नाटकों का अनुवाद किया गया।

बांगला से सर्वाधिक अनुवाद माइकेल मधुसूदन के नाचकों के हुए और उपन्यसों में बंकिमचंद्र चटर्जी के उपन्योसों का अनुवाद हुआ श्रीधर पाठक ने गोल्ड स्मिथ द्वारा रचित हरमिच 'डेजर्टेड विलेज' का अनुवाद एकांतवासी योगी , 'ऊज़ट ग्राम' के नाम से किया था।

जगन्नथ दास 'रत्नाकर' (1866-1932) के पिता भारतेन्दु हरिशचंद्र के अंतरेग मित्र थे। वह उर्दु-फारसी के विद्वान ही नहीं हिन्दी कविता के प्रेमी थे। ये उर्दु, फारसी, संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रश, मराठी, बांग्ला, भाषाओं के ज्ञाता थे। बहुभाषी ज्ञान रखनेवाले साहित्यकारों के उत्तम उदाहरण हैं।

भारतीय साहित्य के विकास क् लिए अनुवाद अनिवार्य साधन है। अनुवाद में काव्यनुवाद सबसे कठिव है। काव्यानुवाद पुनः सृर्जन की प्रक्रिया है।

भारतेन्दु हरिशचंद्र के समान ही तेलुगु साहित्य में कंदुकूरि वीरेशलिंगम पंतुलु का योगदान रहा।

समाज सुधार और साहित्य

अपने छापे खाने से विवेकवर्धनी का प्रकाशन किया। संस्कृत और अंग्रेजी रुपतो का अनवाद किया। 'दक्षिण गोग्रहण', 'प्रहलाद', 'सत्य हरिश्चंद्र' जेसे प्रसहन लिखे।

वस्तुतः भारत को सभी भाषाओं के आधुनिक युग के आरंभ से ही अनुवाद की प्रक्रिया भी शुरु हो गई। छापे खाने ने मुद्रण को आसेन कर दिया। पत्रिकाएँ और पुस्क छपने लगे और लिखित साहित्य अधिक से अधिक लोगों तक पहुँचने लगा। आज भूमंडलीकरण और इंटरनेट का जमाना है। भाषाओं का महत्व ही नही भाषाओं का आदान प्रदान और भाषा समन्वय की गति तेज हो गई है।

अनुवाद का महत्व अनेक क्षेत्रों में बढ़ गया है-

1. राष्ट्रीय एकता
2. संस्कृति विकास
3. साहित्य अध्ययन

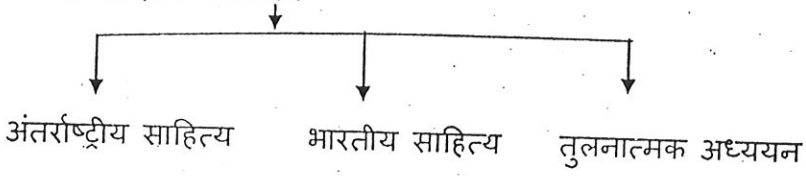

4. जनसंचार
5. बहुभाषी शिक्षण
6. ज्ञान- विज्ञान
7. अनुवाद का रोजगार

अतः अनुवाद और तुलनात्मक अध्ययन द्वारा भिन्न भाषा समुदायों के बीच संप्रेषण के साथ -साथ भारतीय साहित्य की अवधारणा को भी पुष्ट करता है।

भारतीय साहित्य में आज के भारत का बिंब

विभिन्न भाषाओं में लिखी गई विधा या भारतीय साहित्य विभिन्न भाषामें लिखा गया भारतीय साहित्य भारतीय समाज के स्वरूप को प्रतिबिंबत करता है। भारत के राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, भौगोलिक, धार्मिक, सांस्कृतिक संरचना एवंम् उनके प्रभाव का दस्तावेज है। राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न भाषाओं में अनेक विषयों पर साहित्य लिखा गया है। महानगर हो, ग्राम हो, नारी, दलित, आदिवासी, धर्म विमर्श आदि अनेक ऋषिओं द्वारा भारतीयता का बिंब उभरता हैष भारतीय भाषाओं के अतिरिक्त इंडियन इंग्लिश अर्थात भारतीय अंग्रेजी लेखन और प्रवासी भारतीय लेखन द्वारा भी भारत की छबी उभरती है।

भारतीय साहित्य की मूलभूत एकता

भारतवर्ष अनेक भाषाओं का देश है -उत्तर पश्चिम में पं जाबी,हिंदी और उर्दू, पुर्व में ओडिआ, बंगाली और असमिया, मध्य-पश्चिम में मराठी और गुजराती और दक्षिण में तमिल, कन्नड़, मलयालम और तेलुगु आदि हैं। इनके अतिरिक्त और भी भाषाएँ हैं जिनका साहित्य और भाषावैज्ञानिक महत्त्व कम नहीं हैं । जैसे - कश्मीरी, डोगरी, सिन्धी, कोंकणी, तूरू आदि हैं । पंजाबी और सिन्धी, इधर हिंदी और उर्दू की प्रदेश सीमाएं कितनी मिली जुली हुई हैं । इसी प्रकार मराठी और गु जराती का जन जीवन ओत प्रोतहै, किन्तु क्या उनके बीच मेंकिसी प्रकार की भांति सम्भव है ! दक्षिण भाषाओं का उद्गम एक है: सभी द्रविड़ परिवार की विभूतियाँ हैं। परन्तु क्या कन्नड़ या मलयालम या तमिल और तेलुगु स्वरुप के विषय में शंका हो सकती है !यही बात ओडिया, बंगला और असमिया के विषय में सत्य है । बंगला के गहरे प्रभाव को प्रचाकर असमिया और ओडिया अपने स्वतंत्र अस्तित्व को बनाये हुए है ।

दक्षिण में तमिल और उर्दू को छोड़ भारत की लगभग सभी भाषाओं का काल प्रायः समान है । प्रायःसभी भाषाओं का आदिकाल पंद्रहवीं सदी तक च लाथा। इस प्रकार भारतीय भाषाओं के अधिकांश साहित्यों का विकाशक्रम लगभग एक सा है;सभी प्रायः समकालीन चार चरणों में विभक्त है।

अब साहित्य की पृष्टधार पर बात की जाये तो भारत की भाषाओं का परिवार यद्यपि एक नहीं हैं , फिर भी उनका साहित्यिक रिक्थ सामान है । रामायण, महाभारत, पुरा ण, भागवत, संस्कृत का अभिजात साहित्य, पालि, प्राकृत तथा अपभ्रंश में लिखित बौ द्ध, जैन तथा

अन्य धर्मों का साहित्य भारत की समस्त भाषाओं को उत्तराधिकार में मिला ।शास्त्र के अंतर्गत उपनिषद, षडदर्शन, स्मृतियां आदि और उधर काव्यशास्त्र के अनेक ग्रन्थ-नाट्यशास्त्र, धोन्यालोक, काव्यप्रकाश, साहित्यदर्पण, रसगंगाधर आदि की विचा र- विभूतिका उपियोग भी सभी ने निरंतर किया है ।

यहाँ पर इन सामान प्रवृत्तियों का संक्षेप में विश्लेषण कर लेना समीचीन होगा ।

सबसे पहली प्रवृति जो भारतीय वाड्मय में प्राय समान मिलती है, नाथ साहित्य है। दो चार को छोड़ सभी भाषाओं के प्रारंभिक साहित्य के विकास में नाथ पंथियों तथा शैवसाधुयों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है । स्वभावत: नाथ साहित्य का सृजन दक्षिण में उत्तरी और पूर्वी भारत के अपे क्षा बहुत कम हुआ है ।मराठी और बंगाल में नाथ साहित्य की विशिष्ट धारा प्रवाहित हुई । मराठी में तो स्वयं गोरख नाथ की वाणी मिलती है । बंगाल वस्तुत: नाथ संप्रदाय का गढ़ था। गुण और परिणाम दोनों की ओर से बंगाल के नाथ साहित्य समृद्ध है । उसमें बौद्धों के सहजिया संप्रदाय का साहित्य और चर्या गीत आदि की धारा भी घुलमिल गयी है। बंगाल के बाद इस स म्प्रदाय का दूसरा विकास केंद्र था पंजाब । ओडिशा और असाम में भी इस तरह के साहित्य लिखे गयेहें।

दूसरी आरंभिक प्रवृति चारण काव्य है ।यह भी अधिकांश भाषाओं में प्रायः सामान है ।अपनी प्राचीनता के अनुरूप ही तमिल में चारण काव्य संगम काल केआरंभ से ही मिलता है । संगमकाल का प्रसिद्ध महाकाव्य 'सिलाप्पदिकारम' भी एक प्रकार चारण काव्य है । तेलगु में 'पालनाटिवीर चरितम',मलयालम में 'पझय पटटकल',मराठी के मध्ययुगीन 'विराख्याना अथवा वीरगीत रूप पावडे ' चरण काव्य, गुजराती साहित्य में श्रीधर चरित 'रणमल छंद' और पद्मनाभा का 'कन्हडदे', पंजाब में गुरु गोविन्द सिंह का 'अमर काव्य', हिंदी में 'पृथ्वीराज रासो', 'आल्हाखंड', फिर भूषण, सूदन आदि की रचनायें चारण काव्य के अमूल्य उदाहरण हैं।

भारतीय काव्य की तीसरी प्रमुख प्रवृति है संत काव्य । इसकी परंपरा भी प्राय: सर्वत्र विद्यमान है । तमिल के अठारह सिद्ध संत कवि थे जिन्होंने सरस वाणी में रहश्य वादी रचनाएँ की हैं । तेलुगु के वेमन, वीरब्रह्मम और कनड़ के सर्वज्ञ आदि इस वर्ग के प्रमुख कवि हैं । मराठी का संत काव्य तो अत्यंत प्रसिद्ध है ही । गुजरात में भी संत कवि प्रीतम दास की कविताओं में हैं । ओडिशा में महिमा धर्म के संत कवि भीम भोई की कविताओं में मिलती है ।

अब प्रेमाख्यान काव्य की परंपरा पर बात करे तो वह भी भारतीय भाषाओं में प्राय समान रूप से व्याप्तहै । पंजाब और हिंदी में प्रेमाख्यान की परंपरा अत्यंत विस्तृत है ।

भारतीय वाङ्मय की सबसे प्रबल प्रवृत्ति है वैष्णव काव्य जो उतना ही व्यापक भी है । तमिल में वैष्णव काव्य का संग्रह 'नालायिर प्रबंधम' के नाम से प्रसि द्ध है । प्राचीन कन्नड़ सहित्य के इतिहास का तृतीय चरण वैष्णव काल के नाम से प्रसिद्ध है । मलयालम के प्रमुख वैष्णव काव्य है एजुत्तच्चन की'अध्यात्म रामायण' । वैष्णव काव्यधरा का सबसे अधिक गति गुजरती और पूर्वी भाषाओं -अर्थात बंगला, असमिया और ओडिया के साहित्य में देखने को मिलता है ।

अब हम आधुनिक काल के बारे में थोडी सी चर्चा कर लेते हैं । जहाँ भारतेंदु और उनके मंडल के कविओं ने साहित्य का प्राचीन रूपों का नवीकरण और अनेक न वीन रूपों का सृजन कर नव जीवन की चेतना को अभिव्यक्त किया उसी समय पंजाब में गुरुमुख सिंह मुसाफिर, हिरासिंग दर्द आदि कवियों ने राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्य की रचना कर रहे थें । हिंदी में राष्ट्रीयता की भावना मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी और 'नवीन' के काव्यों में प्रचुर परिमाण में मिलता है । आधुनिक साहित्य की ओर एक प्रमुख प्रवृ त्ति है स्वछंदतावाद। इस धरा के प्रमुख कवि हैं- प्रसाद, निराला, पन्त और महादेवी आदि।

आधुनिक भार तीय इतिहास की सबसे महत्त्वपूर्ण घटना थी स्वतंत्रता की प्राप्ति जिसने सभी भाषाओं के साहित्य को प्रभावित किया । भारत ने सत्य और अहिंसा द्वारा प्राप्त अपनी स्वतंत्रता को विश्वमुक्ति के रूप में ग्रहण किया है । भारत की सभी भाषाओं में इस अवसर पर मंगलगान लिखे गए जो सात्त्विक उल्लास और लोक कल्याण की भावना से ओतप्रोत है ।

विगत शताब्दी, स्वतंत्रता से पूर्व सं १९४७ तक आधुनिक साहित्य के सामान्यत: चार चरण हैं: १- पुनर्जागरण, २- जागरण सुधर कल, ३- रोमानी सौंदर्य दृष्टि का उन्येष तथा ४ - साम्यवादि सामाजिक चेतना का उदय ।तमिल के पुनर्जागरण के नेता थे रामलिंग स्वमिगल -इन्होंने अपने काव्य में भारतीय संस्कृति के पुनरुत्थान काप्रयत्न किया । अनंतर कविसुब्रमन्य भारती ने भारत की राजनीतिक, सामाजिक, एवं सांस्कृतिक क्रांति को अपने काव्य में वाणी प्रदान की ।तेलगु में पुनर्जागरण का नेतृत्व विरेशलिंगमने किया ।मलयालम, मराठी, गुजराती आदि भाषाओं में भी नवजागरण का सुत्रपात हुआ । भारतीय भाषाओं का कदाचित सबसे समृद्ध आधुनिक साहित्य है बंगाल का उनिशवीं सदी में राजा राममोहनराय,

ईश्वर चन्द्र विद्यासागर ,महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर आदि की प्रेरणासेपूरे बंगाल साहित्यकरों में नवीन धारा प्रवाहित होने लगी। इस तरह ओडिया , असामी और अन्य भाषाओं में भी नवजागरण का प्रभाव दिखाई देता है ।

अबतक हम भारतीय वाङ्मय की केवल विषय वस्तुगत अथवा रागात्मक एकता की ओर संकेत किया है , किन्तु काव्य शैलियों और काव्य रूपों की समानता भी कम महत्वपूर्ण नहीं ।भारत के प्राय सभी साहित्यों में संस्कृत से प्राप्त काव्य शैलियां-महाकाव्य, खंडकाव्य, मुक्तक, कथा, आख्यायिका आदि के अतिरिक्त अपभ्रंश परंपरा की भी अनेक शैलियाँ, जैसे चरित काव्य, प्रेमगाथा शैली, रस,पद शैली आदि समान रूप में मिल तीहैं।अनेक वर्णिक छंदों के अतिरिक्त अनेक देसी छंद - दोहा, चौपाई आदि भारतीय वाङ्मय के लोकप्रिय छंद हैं।इधर आधुनिक युग के पश्चिम के अनेक काव्य रूपों और छंदों का -जैसे प्रगित काव्य और उसके अनेक भेदों, जैसे संबोधन गीत,शोक गीत, चतुर्दशपीका और मुक्त छंद, गद्य गीत आदि का प्रचार भी सभी भाषाओं में हो चुका है ।

अतः यह कहना अनुचित न होगा कि भारतीय साहित्य अनेक भाषाओं में रचित एक विचारधारा में प्रवाहित साहित्य जैसा है ।

भारत की भाषाएँ

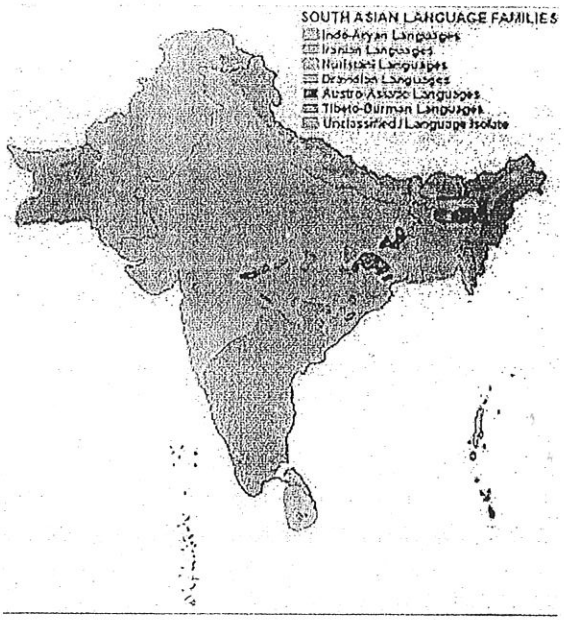

वृहद भारत के भाषा परिवार

- आर्य भाषाएँ-हिन्द 1
- द्रविड़ भाषाएँ 2
- एशियाई भाषाएँ-आस्ट्रो 3
- बर्मी भाषाएँ-तिब्बती 4
- मातृभाषा के अनुसार बड़ी भारतीय भाषाओं की सूची 5
    - दस लाख से कम वाली भाषाएँ 5.1
- संक्षिप्त चिह्न 6
    - स्वर 6.1
    - व्यंजन 6.2

हिन्दआर्य भाषाएँ-

संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी, उर्दू, पंजाबी, सिंधी, कश्मीरी, नेपाली, मैथिली,मराठी, डोगरी, सादरी, कोंकणी, गुजराती बंगाली, उड़िया, असमिया

द्रविड़ भाषाएँ

तुलु, तमिल, तेलुगु, कन्नड, मलयालम

आस्ट्रोएशियाई भाषाएँ-

संथाली, हो

तिब्बतीबर्मी भाषाएँ-

नेपाल भाषा, मणिपुरी, खासी, मिज़ो, आओ, म्हार, नागा

- मातृ अंग या अंगिका लिपि, असमिया लिपि,बंगाली लिपि,देवनागरी लिपि,गुजराती लिपि,गुरमुखी लिपि,
- कन्नड लिपि,लैटिन लिपि,मैथिली लिपि, मिथिलाक्षर, कैथी मलयालम लिपि,नेपाली,उड़िया लिपि,
- सिंहल लिपि,तमिल लिपि,तेलुगु लिपि.

भाषा के अनुसार बड़ी भारतीय भाषाओं की सूची

भारत में द्विभाषिकता एवं बहुभाषिकता का प्रचलन है इसलिए यह सँख्या उन लोगों की है जिन्होंने ने हिन्दी को अपनी प्रथम भाषा के तौर पर १९९१ की जनगणना में दर्ज़ किया था।

सारणीमातृभाषिकों की सं :ख्या के आधार पर अनुक्रमित किया (सार्ट) गया

स्थान	भाषा	१९९१ की भारत की जनगणना[1] [2] (कुल जनसंख्या 838.14 मिलियन(		2001 की जनगणना[3] (कुल जनसंख्या 1,004.59 मिलियन(		एन्कार्टा अनुमानित)2007)
		प्रयोक्ता	प्रतिशत	बोलनेवाले	प्रतिशत	बोलनेवाले
1	हिन्दी[1]	337,272,114	40.0%			336 मि
2	बांग्ला	69,595,738	8.30%			69.9मि
3	तेलुगु	66,017,615	7.87%			69.7 मि
4	मराठी	62,481,681	7.45%			68.0 मि
5	तमिल	53,006,368	7.32%			66.0 मि
6	उर्दू	43,406,932	5.18%			60.3 मि
7	गुजराती	40,673,814	4.85%			46.1 मि

8	कन्नड़	32,753,676	3.91%			35.3 मि
9	मलयालम	30,377,176	3.62%			35.7 मि
10	उड़िया	28,061,313	3.35%			32.3 मि
11	पंजाबी	23,378,744	2.79%			57.1 मि
12	असमिया	13,079,696	1.56%			15.4 मि
13	भीलीभिलोड़ी/भील/	5,572,308	0.665%			
14	संथाली	5,216,325	0.622%			
15	गोंड	2,124,852	0.253%			
16	सिंधी	2,122,848	0.253%			
17	नेपाली	2,076,645	0.248%			
18	कोंकणी	1,760,607	0.210%			
19	तुलु	1,552,259	0.185%			
20	कुरुख	1,426,618	0.170%			

21	मेइते (मणिपुरी(	1,270,216	0.151%	
22	बोड़ो	1,221,881	0.146%	

दस लाख से कम वाली भाषाएँ

		बोलने वाले	प्रतिशत
23	खानदेशी	973,709	0.116%
24	हो	949,216	0.113%
25	खासी	912,283	0.109%
26	मुंडारी	861,378	0.103%
27	कोकबराक भाषा	694,940	0.083%
28	गारो	675,642	0.081%
29	कुई	641,662	0.077%
30	मीज़ो	538,842	0.064%
31	हलाबी	534,313	0.064%

32	कोरकू	466,073	0.056%
33	मुंडा	413,894	0.049%
34	मिशिंग	390,583	0.047%
35	कार्बीमिकिर/	366,229	0.044%
36	सावरा	273,168	0.033%
37	कोया भाषा	270,994	0.032%
38	खड़िया	225,556	0.027%
39	खोंड	220,783	0.026%
40	अँग्रेजी	178,598	0.021%
41	निशी	173,791	0.021%
42	आओ	172,449	0.021%
43	सेमा	166,157	0.020%
44	किसान	162,088	0.019%

45	आदी	158,409	0.019%
46	रभा	139,365	0.017%
47	कोन्याक	137,722	0.016%
48	माल्तो भाषा	108,148	0.013%
49	थाड़ो	107,992	0.013%
50	तांगखुल	101,841	0.012%

अभ्यास के लिए कार्यः-

भारतीय अंग्रेजी लेखन के कुछ उदाहरण, कुछ किताबे ढूंढे। ऐसे ही प्रवासी भारतीय लेखन ओर साहित्य आधुनिक जीवन पर विचार करे।

Unit -4

भारतीय साहित्य का समाजशास्त्र

उद्देश्य-

मानवीय जीवन मूल्यों तथा जातीय इतिहासों की दृष्टि से भारतीय साहित्य का अध्ययन इस इकाई का उद्देश्य है। इसके अंतर्गत भारतीय का विवेचन, विश्लंषण किया जाएगा। यह साहित्य और समाजशास्त्र का अंतर अनुशासनिक पद्धति है। निम्नलिखित बिन्दुओं को जान सकेंगे।-

- भारतीय समाज की संरचना
- मानवीय जीवन की गतिविधि
- अनुभव जन्य विवेचन
- विविध विचारत्मक विश्लेषण
- विविध विचारधाराएँ

भारतीय साहित्य के संदर्भ में डॉ. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव का कहना है कि - "मानवीय जीवन मूल्यों और जातीय इतिहास, सामाजिक चेतना, सांस्कृतिक मूल्य एवं साहित्यक संवेदना के संदर्भ में भारतीय साहित्य एक है, भलेही वह विभिन्न भाषाओं के अभिव्यक्ति के माध्यम द्वारा व्यक्त हुआ है।"

डॉ. नगेन्द्र और डॉ. सुनीतिकुमार चैटर्जी भी भारतीय साहित्य की विशाल पृष्ठभूमि की अंतःसत्ता को एक नवीन इकाई के रुप में स्वीकार किया है। भारत में विभिन्न भाषाओं का एक समाज है, एक साहित्य है, एक विरासत है।

साहित्य मूलतः समाज की उत्पत्ति है। इसलिए साहित्य और समाज का अंतः संबंध की उपेक्षा नहीं हो सकती।

समाज परिवर्तन शील है और परिवर्तित होते हुए समाज की प्रवृतियाँ, मूल आधार और बाहय उपकरण भी परिवर्तित होते रहते हैं। साहित्यकार समाजगत परिवर्तनों को ही प्रक्षेपित करता है। व्हिटमैन के शब्दों में- "सावधान, यह पुस्कत नहीं, जीवन है, जो इसे छूता है, मनुष्य को छूता है।"

समाज शास्त्रीय अध्ययन एक मात्रात्मक पद्धति है जो सिद्धांतो की सकारात्मकता से पुष्ट होती है। यह एक वैज्ञनिक विधि के रुप उभरी और प्रामाणिक ज्ञान को ही वैज्ञनिक एमिल दुर्खोम ने सैद्धातिकता आधारित अनुभवजन्य अनुसंधान को महत्व दिया और समीक्षा को महत्व दिया।

यह प्रत्यक्षवादी थे जिनका मंतव्य था कि एक व्यक्ति संबंधों की तलाश करता है- जो अनैतिहासिक, अपरिवर्तनीय अथवा सामान्य है। समाजशास्त्र स्थूल एवं सूक्ष्म में विभाजित है। सामाजिक अनुसंधान एक मात्रात्मक और गुणात्मक (क्वालीटेटिव और क्वांटिटेटिव) उपकरण है जिसका प्रयोग समाजविज्ञानी अनुसंधान के लिए करते हैं। वस्तुतः साहित्य का समाजशास्त्र केवल तथ्यों से नहीं बल्कि समीक्षा, विश्लेषण और विवेचन की मांग करता है। साहित्य समाज का सूक्ष्म दस्तावेज होता है।

क्षितिमोहन सेन की 'भारतवर्ष में जातिभेद', रांगेय राघव की 'सामाजिक संस्थाएँ और रीति-रिवाज', पूरनचंद जोशी - 'आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन ', डॉ. एम.एन श्री निवास की 'महाभारत कालीन समाज', के .एम. पणिक्कर का 'हिन्दू समाज-निर्माण के द्वार पर', डॉ. हरदेव बाहरी - 'प्राचीन भारतीय संस्कृतिकोश', (वैदिककाल से 12वीं शताब्दी तक)

समाजविज्ञान के अंतर्गत- दर्शन, शिक्षा, मनोविज्ञान, नृविज्ञान, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व, राजनीति विज्ञान, लोक प्रशासन, विधि, पत्रकारिता एवं मुद्रण कला, कला तथा संगीत, साहित्य तथा भाषा विज्ञान।

परिणाम और गुणों की दृष्टि से भारतीय साहितेय के अंतर्गत लगभग 28 भाषोओं और हजारों बोलियों का लोक साहित्य समुद्र की भाँति विशाल एवं गहरा है। इसका समनिवत रुप अत्यंत कठिन है। कोई भी विद्वान भारतीय साहित्य का समग्रज्ञानी होने का दावा नहीं कर सकता। अनेक अंशों में आंशिक ही है।

प्राचीन भारत

मध्ययुगीन भारत

आधुनिक भारत

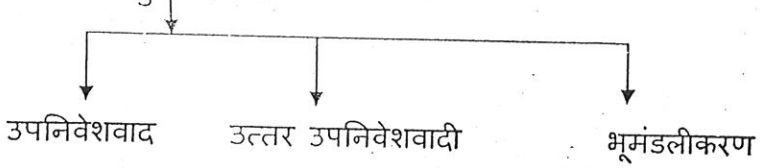

महाश्वेता देवी

14 जनवरी, 1926 को महाश्वेता देवी का जन्म अविभाजित भारत के ढाका में हुआ था। इनके पिता, जिनका नाम मनीष घटक था, वे एक कवि और उपन्यासकार के रूप में प्रसिद्ध थे। महाश्वेता जी की माता धारीत्री देवी भी एक लेखिका और सामाजिक कार्यकर्ता थीं। महाश्वेता देवी ने अपनी स्कूली शिक्षा ढाका में ही प्राप्त की। भारत के विभाजन के समय किशोर अवस्था में ही इनका परिवार पश्चिम बंगाल में आकर रहने लगा था। इसके उपरांत इन्होंने 'विश्वभारती विश्वविद्यालय', शांतिनिकेतन से बी अंग्रेज़ी विषय के साथ किया। इसके बाद .ए. 'कलकत्ता विश्वविद्यालय' से एमभी .ए. अंग्रेज़ी में किया। महाश्वेता देवी ने अंग्रेज़ी साहित्य में मास्टर की डिग्री प्राप्त की। इसके बाद एक शिक्षक और पत्रकार के रूप में इन्होंने अपना जीवन प्रारम्भ किया। इसके तुरंत बाद ही कलकत्ता विश्वविद्यालय में अंग्रेज़ी व्याख्याता के रूप में आपने नौकरी प्राप्त कर ली। सन 1984 में इन्होंने सेवानिवृत्ति ले ली।

एक बांग्ला साहित्यकार एवं सामाजिक कार्यकर्ता हैं। इन्हें 1996 में ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित किया गया था। महाश्वेता देवी का नाम ध्यान में आते ही उनकी कई कई छवियां- आंखों के सामने प्रकट हो जाती हैं। दरअसल उन्होंने मेहनत व ईमानदारी के बलबूते अपने व्यक्तित्व को निखारा है। उन्होंने अपने को एक पत्रकार, लेखक, साहित्यकार और आंदोलनधर्मी के रूप में विकसित किया। महाश्वेता देवी का जन्म सोमवार १४ जनवरी १९२६ को अविभाजित भारत के ढाका में हुआ था। आपके पिता मनीष घटक एक कवि और एक उपन्यासकार थे और आपकी माता धारीत्री देवी भी एक लेखकिका और एक सामाजिक कार्यकर्ता थीं। आपकी स्कूली शिक्षा ढाका में हुई।

भारत विभाजन के समय किशोरवस्था में ही आपका परिवार पश्चिम बंगाल में आकर बस गया। बाद में आपने विश्वभारती विश्वविद्यालय, शांतिनिकेतन से बी).ए.Hons) अंग्रेजी में किया और फिर कोलकाता विश्वविद्यालय में एम अंग्रेजी में किया। कोलकाता .ए. विश्वविद्यालय से अंग्रेजी साहित्य में मास्टर की डिग्री प्राप्त करने के बाद एक शिक्षक और पत्रकार के रूप में आपने अपना जीवन शुरू किया। तदुपरांत आपने कलकत्ता विश्वविद्यालय में अंग्रेजी व्याख्याता के रूप में नौकरी भी की। तदपश्चात 1984 में लेखन पर ध्यान केंद्रित करने के लिए आपने सेवानिवृत्त ले ली।

महाश्वेता जी ने कम उम्र में लेखन का शुरू किया और विभिन्न साहित्यिक पत्रिकाओं के लिए लघु कथाओं का महत्वपूर्ण योगदान दिया। आपकी पहली उपन्यास , "नाती", 1957 में

अपनी कृतियों में प्रकाशित किया गया था 'झाँसी की रानी' महाश्वेता देवी की प्रथम रचना है। जो 1956 में प्रकाशन में आया। स्वयं उन्हीं के शब्दों में , "इसको लिखने के बाद मैं समझ पाई कि मैं एक कथाकार बनूँगी। इस पुस्तक को महाश्वेता जी ने कलकत्ता में बैठकर नहीं " बल्कि सागर, जबलपुर, पूना, इंदौर, ललितपुर के जंगलों , झाँसी ग्वालियर, कालपी में घटित तमाम घटनाओं यानी 1857-58 में इतिहास के मंच पर जो हुआ उस सबके साथ साथ चलते-हुए लिखा। अपनी नायिका के अलावा लेखिका ने क्रांति के तमाम अग्रदूतों और यहाँ तक कि पहले मेरी" अंग्रेज अफसर तक के साथ न्याय करने का प्रयास किया है। आप बताती हैं कि मूल विधा कविता थी, अब कहानी और उपन्यास है। उनकी कुछ महत्वपूर्ण कृतियों में " 'अग्निगर्भ' 'जंगल के दावेदार' और '1084 की मां', माहेश्वर, ग्राम बांग्ला हैं। पिछले चालीस वर्षों में, आपकी छोटी छोटी कहानियों के बीस संग्रह प्रकाशित किये जा चुके हैं और सौ उपन्यासों-प्रकाशित हो चुकी है। (सभी बंगला भाषा में) के करीब

रचनाएँ

एक पत्रकार, लेखक, साहित्यकार और आंदोलनधर्मी के रूप में अपार ख्याति प्राप्त की। 'झाँसी की रानी' महाश्वेता देवी की प्रथम रचना है। जो 1956 में प्रकाशन में आया। उनकी कुछ महत्वपूर्ण कृतियों में 'अग्निगर्भ' 'जंगल के दावेदार' और '1084 की मां', माहेश्वर, ग्राम बांग्ला हैं। पिछले चालीस वर्षों में , आपकी छोटी-छोटी कहानियों के बीस संग्रह प्रकाशित किये जा चुके हैं और सौ उपन्यासों के क़रीब (सभी बंगला भाषा में) प्रकाशित हो चुकी है। महाश्वेता देवी की कृतियों पर फिल्में भी बनीं। 1968 में 'संघर्ष', 1993 में 'रूदाली', 1998 में 'हजार चौरासी की माँ ', 2006 में 'माटी माई '।[2] महाश्वेता देवी की कुछ प्रमुख रचनाएँ निम्नलिखित हैं-

लघुकथाएँ - मीलू के लिए, मास्टर साब

कहानियाँ - स्वाहा, रिपोर्टर, वान्टेड

उपन्यास - नटी, अग्निगर्भ, झाँसी की रानी, मर्डरर की माँ, 1084 की माँ, मातृछवि, जली थी अग्निशिखा, जकड़न

आत्मकथा उम्रकैद, अक्लांत कौरव

आलेख - कृष्ण द्वादशी, अमृत संचय, घहराती घटाएँ, भारत में बंधुआ मज़दूर, उन्तीसवीं धारा का आरोपी, ग्राम बांग्ला, जंगल के दावेदार, आदिवासी कथा

यात्रा संस्मरण - श्री श्री गणेश महिमा, ईंट के ऊपर ईंट

नाटक - टेरोडैक्टिल, दौलति[1]

समाज सेवा

बिहार, मध्य प्रदेश तथा छत्तीसगढ़ के आदिवासी इलाके महाश्वेता देवी के कार्यक्षेत्र रहे। वहाँ इनका ध्यान लोढ़ा तथा शबरा आदिवासियों की दीन दशा की ओर अधिक रहा। इसी तरह बिहार के पलामू क्षेत्र के आदिवासी भी इनके सरोकार का विषय बने। इनमें स्त्रियों की दशा और भी दयनीय थी। महाश्वेता देवी ने इस स्थिति में सुधार करने का संकल्प लिया। 1970 से महाश्वेता देवी ने अपने उद्देश्य के हित में व्यवस्था से सीधा हस्तक्षेप शुरू किया। उन्होंने पश्चिम बंगाल की औद्योगिक नीतियों के ख़िलाफ़ भी आंदोलन छेड़ा तथा विकास के प्रचलित कार्य को चुनौती दी।

पुरस्कार

1977 में महाश्वेता देवी को 'मेग्सेसे पुरस्कार ' प्रदान किया गया। 1979 में उन्हें 'साहित्य अकादमी पुरस्कार ' मिला। 1996 में 'ज्ञानपीठ पुरस्कार ' से वह सम्मानित की गईं। 1986 में 'पद्मश्री' तथा फिर 2006 में उन्हें 'पद्मविभूषण' सम्मान प्रदान किया गया।

अग्निगर्भ प्रस्तुत हैं पुस्तक के कुछ अंश

बटाईदारी अधिया जैसी घृ-णित प्रथा में किसान पिस रहे हों , खेतिहर मजदूरों को न्यूनतम मजदूरी न मिले, बीज पानी बिजली के लाले पड़े तो उनका अस्तित्व दाँव पर-खाद- होता है, ऐसे में वह सामंती हिंसा के विरूद्ध हिंसा को चुन ले तो क्या आश्चर्य?

अग्निगर्भ का संथाल किसान बसाई टुडू किसान संघर्ष-में मरता है। लाश जलने के बावजूद उसके फिर सक्रिय होने की खबर आती है। बसाई फिर मारा जाता है। वह अग्निबीज है और अग्निगर्भ है सामंती कृषिव्यवस्था।-

महाश्वेता देवी मानती हैं कि धधकते वर्ग संघर्ष को अनदेखा करने और इतिहास के- इस संधिकाल में शोषितों का पक्ष न लेनेवाले लेखकों को इतिहास , माफ नहीं करेगा। असंवेदनशील व्यवस्था के विरूद्ध शुद्ध , सूर्य समान क्रोध ही उनकी प्रेरणा है। एक अत्यन्त- प्रेरक कृति।

भूमिका

पश्चिम बंगाल में और भारतवर्ष में कृषक वर्ग के मुख्य रूप से भूमिहीन किसानों के), जिनकी संख्या आजकल प्रायः वर्ग के किसानों के अनुपात में सौ में 26.33 भाग है असंतोष (मात्र नहीं है। आधुनिक इतिहास के हर पर्व में- और विद्रोह का इतिहास समकालीन घटना विद्रोह का प्रयास, उनके प्रति दूसरे वर्ग के शोषण के चरित्र को प्रकट करता है , कालान्तर में भी अब तक वह प्रायः अपरिवर्तनीय बना है। संन्यासी विद्रोह , वहाबी आंदोलन, नील विद्रोह,

एक समय से दूसरे समय तक और और विद्रोहों में आरंभ कर आज के नक्सलबाड़ी आंदोलन-ने प्रायः एक ही मौलिक अधिकार को ज़ोरों से ऐतिहासिक मर्यादा दी है।

1967 के मई जून में नक्सलबाड़ी अंचल में संगठित आंदोलन की पृष्ठभूमि-विषय की पुनः आलोचना में सहायक होगी। दार्जिलिंग ज़िले के नक्सलबाड़ी, खड़ीबाड़ी और फाँसी लगने वाले अंचल के अधिकांश भाग के रहने वाले आदिवासी भूमिहीन किसान हैं। उनमें मेदी , लेप्चा, भोटिया, संथाल, ओराँव राजबंसी और गोरखा संप्रदाय के लोग हैं। स्थानीय ज़मीदारों ने बहुत दिनों से चली आ रही 'अधिया' की व्यवस्था में उन पर अपना शोषण जारी रखा। इस व्यवस्था के नियम के अनुसार ज़मीदार भूमिहीन किसानों के बीज के लिए धान , हलबैल-, खाना और मामूली पैसे देकर अपने खेत में काम पर लगाते , उपज का अधिकांश भाग ज़मींदार के घर जाता। इसके विरोध में ही किसानों का असंतोष और विद्रोह है। उपज का बड़ा भाग ज़मींदार के घर जाना , मामूली बात पर राजी नाराज़ी के आधार पर किसानों को-ज़मीन से अलग कर देना, और सबसे अधिक ज़मीन के लिए किसान की आदिम भूख है। इस तरह असंतोष और संघर्ष के दृष्टिकोण से ही 1954 में सरकार ने 'एस्टेट ऐक्वीज़िशन ऐक्ट' पास किया। इस कानून की ख़ास बात थी कि कोई व्यक्ति कुल मिलाकर 25 एकड़ से अधिक ज़मीन न रख सकेगा। इस कानून के पीछे अच्छी नीयति में शक ही नहीं , लेकिन क्रियान्वित करने में ज़मीन के मालिकों की मामूली सी ज़मीनें ही गयीं। बेमानी सारी ज़मीनें-उनके पास रह गयीं।1971 में परिवार के आधर पर कृषि भूमि की उच्चतम सीमा निश्चित कर जो क़ानून पास किया गया (संशोधित), उसमें भी कोई लाभ नहीं हुआ। सबकों पता है , क़ानून में मछलियों को पालने के बाड़े, चाय के बाग, औद्यौगिक कारखाने इत्यादि नामों की ओट में हजारों एकड़ खेती की ज़मीन छिपा रखने के विरुद्ध कोई बात ही नहीं।

असंतोष का अन्यतम कारण , इस इलाक़े के चायबाग़ानों की मिल्कियत की ज़मीने थीं। यहाँ काम करने वाले मजदूर प्रमुखतः बाग़ान मालिकों के लाये- हुए थे। वंश परंपरा से-रहते हुए स्थानीय निवासी हो गए थे। अमानवीय शोषण के दबाव से ये सदा ही असंतुष्ट रहते और इनके बारे में1967 के 6 जून के द स्टेट्समैन अख़बार में लिखा गया थाः 'ऑल मोस्ट ए स्टेट ऑफ़ क्रूअल स्लेव्री।' इन चाय बागानों के मालिकों के क़ब्जे में-जो अतिरिक्त ज़मीन थी, उसे उन्होंने आश्रित श्रमिकों में लेने की सोची, किंतु बाद में योजना छोड़ दी गयी। इससे श्रमिको ने मन में असंतोष की गाँठ पड़ गयी। सन् पचास के मध्य भाग में चाय - बाग़ान अंचल के अधिया वालों ने मालिकों के विरुद्ध आंदोलन आरंभ किया। उनकी मूल माँग थी कि चाय बाग़ान की अतिरिक्त भूमि सरकारी अधिकार के आश्रय में लानी होगी-और उन लोगों में उसे बाँट देना होगा।1956 में इस आंदोलन ने एक भयंकर रूप धारण कर लिया।

परिणामस्वरूप बाग़ानों के मालिकों ने ज़मीनों से अधियारियों को उखाड़ फेंका ,। उनके घर नहस करवा दिये। इस प्रकार के- द्वार के मालिकों को पैरों के नीचे कुचलकर तहस- अत्याचार और अन्याय के विरुद्ध नक्सलवादी के किसान एक दिन संगठित शक्ति लेकर शोषित किसानो को- विद्रोह के पथ पर उतर पड़े। उस आंदोलन में एक ही तरह से वंचित आंध्र में, केरल में, तमिलनाडु में, बिहार में और उड़ीसा में प्रेरणा दी। जिसे नक्सलबाड़ी आंदोलन नाम दिया गया है , उसे बहुत से नाम दिये गये हैं। सारे काम का मुक़ाबला किस-, तरह किया गया, यह सभी जानते हैं। घटनाओं से चरम वामपंथी पतन , किताबी और बहुत जोशीले युवकों का फ्रस्टेशन अन्य शक्तियों और कृपाओं पर पली संस्थाओं के क्रियाकलाप जो भी क्यों न कहा जाये, कुछ तो सचमुच बाक़ी रह ही जाता है। जिन जिन कारणों से यह- आंदोलन उत्पन्न हुआ वे अक्षुण्णा और अप्रतिबंधित हैं। इस मत के अनुयायी युवक ही पहल हिंसा की राजनीति लाये।-अहिंसक भारत में पहले

यह होने पर भी भारत के नक़्शे से कुछ कुछ चिह्न पोंछकर मिटाये नहीं जा सकते।- टोक चल रहा है। ज़मीदारों ने बेनामी- भूखे किसानों का शोषण बे रोक, देश की प्रायः सारी खेती योग्य भूमि कुछ हजार परिवारों की मिल्कियत में कर ली है। दूसरे नाम से चक्रवृद्धि- ब्याज से पीसना और बेगार लेना चल रहे हैं। ग्राम्य भारत का स्वरूप श्मशान की तरह है। सूखे में और गरमी में आदिवासी और अन्यान्य तथाकथित अवर्ण हिंदू जाति सूखी नदी का कलेजा खोदकर पानी तलाश करते हैं , भात का फेन और आमानी 1 बिकते हैं। पलामू के आदिवासी लोगों को चीना घास के बीच के सिवा और कोई चीज़ खाने को प्रायः नहीं मिलती। आंध्र में कांग्रेस की विजय के अर्थ निश्चय ही यह नहीं है वहाँ बहुत दिनों से नक्सल दमन- जिन करणों से आंदोलन भड़का- के नाम से अवर्णनीय अत्याचार नहीं हुए। जिन, वे कारण अभी मौजूद हैं। हर जन - आंदोलन के पीछे के उनके कारणों की विवरण-संख्या बाद के खोज करने वालों ने जमा की। यह देखा गया है कि आंदोलन का स्वरूप और प्रवृत्ति लेकर जितनी गड़बड़ रही, दमन में उतनी ही दक्षता रही। क्षणिक होते हुए भी किन किन करणों से- तृणभूमि में आग लगी, इस बारे में सब मौन हैं। किंतु प्रशासन के मौन रहने की क्या सच्चाई समाप्त हो जाती है ?

मेरी कहानियों की पृष्ठभूमि का उद्देश्य प्रमुखतः नक्सलबाड़ी घटना वली और उसकी- पृष्ठभूमि का उल्लेख प्रधानतः होने पर भी यह मानना होगा कि इस देश के कई दशकों की यात्रा में वही सबसे अधिक उल्लेखनीय और अनुप्राणिक होने योग्य घटना है। बसा-जीवनई- द्रौपदी की ये सारी घटनाएँ ही तात्कालिक परिणाम में नाम और स्थानीय अवस्थिति के-टूडू मार्ग-सिवा काल और देश के प्रतीक बन गये। अवश्य ही किसी भी आंदोलन का शायद साधन और परिणाम सच नहीं होता, एकमात्र अतिहास ही उनके मूल्य का निर्णायक होता है। और वर्तमान युद्धरत मनुष्य इसलिए सब देशों में अपना बनाया सारा मार्ग तोड़कर नया पथ निर्मित करने का स्वप्न देखता है और प्रतिज्ञा करता है। इतिहास के द्वंद्वपूर्ण मार्ग पर इसी

कारण से निरंतर गंतव्य स्थान का सत्य ही सत्य के नाम से चित्रित होता है। किंतु, सब जगह समस्या केवल भूमि की नहीं है।

खेतमजूर के ----------

1. पानी, जिसमें रात को भात भिगोकर रखा जाता है।

हिसाब से किसान अपने उचित प्राप्य से वंचित हैं। पानी, बीज के धान, खाद के लिए उसकी निरंतर लड़ाई, अनाहार और ग़रीबी में उनके दिन कटते हैं। स्वतंत्रता के बाद इस देश में जो आर्थिक प्रगति हुई है, उसका फल किसी मध्यवर्गीय खेतमजदूर को नहीं मिला।-मजदूर-एक ओर, धनी वर्ग और अधिक धनी हो गये हैं-, एक आत्मतुष्ट, अशिक्षित, असभ्य नया धनिक वर्ग उत्पन्न हुआ है। दूसरी ओर सामान्य मध्यवित्त लोगों के पास जो कुछ था उसे-खोकर वे अधिक ग़रीब बन गये। निम्मवित्त एवं मध्य वित्त वर्ग आज सम्पूर्ण रूप से क्षय-होने की ओर बढ़ रहे हैं। धनी किसान और अधिक धनी हो गये हैं, मामूली ज़मीनों के मालिक अपनी अंतिम सहारे धरती को ज़मीदार महाजन को देकर खेतमजूरों की संख्या बढ़ा-रहे हैं। इसके अलावा जीवित रहने का मौलिकअधिकार भी यहाँ उनके लिए निषिद्ध है, वहीं शहरी धनी मध्यवर्ग और उच्चवर्ग के किरायेदार साहित्य के नाम से अपने अपने-आत्मानुशीलन में लगे हैं। रोम जलने के बाद नीरो ने वायलिन बजाया तो था। उनको भूलकर अपने वायलन का गुंजन ही उसे अच्छा लग रहा था।

लेकिन उसके परिणामस्वरूप उसे भी मिट जाना पड़ा। बंगाल साहित्य में बहुत दिनों तक विवेकहीन वास्तविकता से विमुख साधना चली। लेखक लोग प्रत्यक्ष को देखकर भी नहीं देख रहे हैं इसका नतीजा हुआ है, अच्छे पाठकों के मन में उनका भी परित्याग हो गया है। तमाम समस्याओं, तमाम अन्याय, बहुतेरी जातियों, तमाम लोकाचारों से युक्त देश के लेखकों की सामग्री देश और उसके मनुष्यों से नहीं मिलती, इससे अधिक आश्चर्य की बात और क्या हो सकती है ? मनुष्य के प्रति इस, प्रकार का यह नकचढ़ान संभवतः भारतवर्ष की तरह के आधे औपनिवेशिक, आधे सामंतवादी, विदेशी शोषण के अभ्यस्त बराबर बढ़ रही है, चीज़ों का दाम आकाश छू रहे हैं, शिक्षा में हद की अराजकता है, इससे मध्यवित्त संतुलन खोकर रेले में दूसरे वर्ग की ओर बढ़े जा रहे है , वर्ग संघर्ष का क्षेत्र अधिक साफ होता जा रहा है।-काल में एक ज़िम्मेदार लेखक को शोषितों के- इतिहास के इस संधिलिए क़लम उठाने पर बाध्य होना पड़ता है। अन्यथा इतिहास उसे माफ़ नहीं करेगा।

लिखने की ज़रूरत क्यों हुई, यह बात दिया गया है। संभवतः, अब कुछ घर की बात भी बताने की ज़रूरत है। मेरी रचना में निर्देशित राजनीति खोजना व्यर्थ है। शोषित और पीड़ित मानव के प्रति संवेदनशील मानव ही मेले लेखन की प्रधान भूमिका है। 'जल' कहानी का मास्टर भला कौन विवेकवान कांग्रेसी है। 'एम० डब्ल्यू० बनाम लखिन्द ' गल्प का

खेतमजूर के खेतीमजूर यूनियन का नेतृत्व प्रदान किया आंदोलन है। ०आई ०पी ०आंदोलन सी- 'ऑपरेशन बसाई टूडू' कहानी का काली साँतरा सी० पी० एम० दल में रहा है बसाई टूडू ने स्वयं नक्सल आंदोलन को भी छोड़ दिया था। और द्रोपदी-' गल्प की नायिका आदिवासी नक्सल कार्यकर्त्री थी। मानसिकता में और कहीं एक ओर वहीं एकीभूत होना मेरे निकट- परस्पर विरोधी नहीं है। जीवन गणित नहीं है और राजनीति के लिए मनुष्य नहीं, मनुष्य के स्वाधिकार को जीवित रखने के अधिकार को सार्थक करना ही समस्त राजनीति का लक्ष्य होना उचित है, यह मेरा विश्वास है।

मुझे वर्तमान समाज व्यवस्था को बदलने की आकांक्षा है-,। मैं शुद्ध दलगत राजनीति में विश्वास नहीं रखती। स्वतंत्रता के इकत्तीस बरस में मैंने अन्न , जल ज़मीन, क़र्ज, बेगार- किसी से भी देश के मनुष्य को मुक्ति पाते नहीं देखा। जिस व्यवस्था ने यह मुक्ति नहीं दी उसके विरुद्ध शुभ्र, शुद्ध और सूर्य के समान क्रोध ही मेरे समस्त लेखन की प्रेरणा है दक्षिण - सभी दल सामान्य मनुष्य से किये हुए वायदों को पूरा क-वामरने में असफल रहे हैं ऐसा मेरा विश्वास है। मेरे जीवन काल में इस विश्वास को बदलने का कोई कारण होगा-, ऐसी आशा नहीं है, इसी से सामर्थ्य के अनुसार मानव की कथा ही लिखी , जिससे कि सामना होने पर उसके लिए लज्जित न होना पड़े, क्योंकि लेखक को जीवनकाल में ही अंतिम न्या-य के लिए उपस्थित होना पड़ता है और जवाबदेही की ज़िम्मेदारी रह जाती है।

अग्निगर्भ

थाने में अचानक खबर आयी। चील ने जैसे कौए के बीच मांस का टुकड़ा फेंक दिया हो और उसके बाद काँव काँव मच गयी हो। खबर लाया था एक लड़का। जमाने का एक- रँगरूट। ज़माना भला नहींथा। सत्तर के साल से ज़माने के कलेजे पर आग बुझाने वाले वकील, व्यापारी, साइकिल रिक्शा वाले ज़ामाने के रँगरूट बन गये थे। उनका काम मतलब- की खबर जुटाकर थाने पर पहुँचना था।'आर्मी मस्ट ओबे'1। वेतन के रूप में इनको मिलती थी थाने की सुरक्षा। नौलखा हार थाने की सुरक !ष्षा न मिलने से भद्दी बदशक्ल परोपकरी- महिलाओं को धर्मराजा के मेले में कैम्प लगाने पर डाँट पड़ी। रँगरूटों को सुरक्षा मिलती है अपने ढँग से कमाते-और वे इस बाजार में अपने-खाते हैं।

खबर लाया था एक लड़का मातो डोम। रँगरूट बनने के बाद से लड़का चरसा गाँव से- भागा दिया गया था, या अपनी तबीयत से प्रवासी बना हुआ था। बीच बीच में वह गाँव जाता-

और'बॉबी' छपी बनियान और रंगीन छींट की लुंगी दिखा डोमिनियों को लुभाकर चला आता। उसने बताया, 'बसाई मर गया।

'कौन ?'

'बसाई, बसाई टूडू2।'

'मर गया ? तूने देखा ?'

'मैंने नहीं देखा। बाप ने बताया।'

एस० आई०3 उस पर भी नहीं घबरया। पर थाने पर मुंशी देउकी

---

1. सेना को हुक्म मानना होगा 2. संथालों में एक जाति 3. सब इंस्पेक्टर, नायब दारोगा।

मिसिर पुराना घाघ था। सारी हुकूमतों के अमल में बाबुओं की सुरक्षा पाने वाला था। वह बोला, 'उसका बाप है रतन। वही रतन। जब ने कहा है तो खबर छूछी न होगी। आप जाएँ। '
'रतन डोम ?'

'हाँ' मशाई। नाचता फिरता था। बच्चू ने इससे भी कुछ नहीं सीखा।
'बच्चू जेल में नहीं है ?'

'हज़ार वोट कंट्रोल 1 उसे जेहन में कौन रखेगा ? सामन्त की ओट 2 क्या आप देंगे ?'

वोट चुप हो गये और रतन डोम को जेल की कोठरी में देखने की ०आई ०कंट्रोल सुनकर एस- इच्छा के लिए अपने को धिक्कारने लगे। लड़के से बोले, 'तेरा बाप क्या कहता था ? वह कहाँ है ?'

देउकी मिसिर ने फिर टोका , "रतन डोम थाने आयेगा ? थाना उसकी जगह है। "
एस० आई० ने पूछा, 'तेरा बाप कहता था ?'

'ना बाप ने मुझे नहीं देखा !, वह मर गया। बसाई मर गया , उसे देखने भागा। मैंने पूछा कहाँ ? वह बोलीचरसा के पास जंगल में।-'

बात सुनकर एस० आई के शरीर में भूचाल आ गया। जंगल को कूम 3 करने की उनकी बात थी। बरसात बीतने पर हम जायेंगे। चरसा के जंगल का ध्यान कर उनका कलेजा काँप उठता था। वह साल के पेड़ों के जंगल की तरह नहीं था। पेड़ो के बीच से आँखें चलती थीं। चरसा में साल बहेड़ा का घना-आँवला-केंदू-पियासाल- जंगल था। बरसात में चरसा नदी किनारे तोड़ कर बहती थी। उस पानी को पाकर बड़ी बडी लताएँ-, हंसपदी लता और उलट कंबल के पेड़ जंगली हो जाते। ऐसे जंगल को 'कूम' कराना बहुत मुश्किल था। बीमारी का बहाना बनाकर वे चैन की बंशी बजा रहे थे। अब अगर उस जंगल में बसाई टूडू मरता है तो उनकी नौकरी पर मुसीबत है। सामन्त उसे कच्चा ही चबा जायेगा। सामन्त की पार्टी के कम लड़कों को उसके वैनिश4 नहीं किया। जेल से निकलकर वे उसका क्या करेंगे, यह सोचकर ही उसकी नींद उड़ जाती थी।

अब देउकी मिसिर ने सब समझ लिया और बोला, 'मातो, तू बाहर जा। बस का कंडक्टर है न ?'

----------1. हाथ में रखता है

2. वोट

3. छानना

4. सफ़ाया।

'नहीं, बेकार हूँ।

'मैं कह दूँगा।'

मातो चला गया। मन मन बहुत-ही-गुस्सा आया। कह दूँगा। होः। थाना बाबू के कहने पर क्या पाल बाबू को मजाल है कि उसे कंडक्ट्री न दे अभी तो मातों बहुत धकियाया हुआ ! और लाचार है। जात गयी, पेट भी नहीं भरता। बाप उससे घृणा करता है। गाँव में रहना उसके लिए ख़तरे से खाली नहीं है। बस की कंडक्ट्री मिल जाये तो मन में फिर भी सांत्वना रहे। लेकिन बम्हनई की गर्मी में मिसिर बाबू उससे घृणा करते हैं। आज कल सिनेमा के आगे चिनिया बादाम बेचना उसकी रोजी है। उससे 'शहर में है' कहना तो चल जाता, पर यह कुछ जिंदगी नहीं थी। जी भर के सिनेमा देखना, छककर शराब पीना, गले में रुमाल बाँधकर शहर

में घूमनासभी तो पहुँच के बाहर रह जाता है। बसाई की ख़बर बता दी है-, इससे अब उसे डर लगने लगा है। बसाई धर्मराज की तरह ही अचूक और बदला लेने वाला है।

मातो को तो वह बहुत बड़ी सजा दे सकता है। डर के मारे विवश होकर मानो काली साँतरा के पास जाता है काली साँतरा प्रौढ़ है, शासन का आदमी है, किसान आंदोलन में कभी बसाई का साथी रह चुका था। 'ज़िला वार्ता' नाम के भद्दे छपे साप्ताहिक का संपादक है।

काली साँतरा बहुत समय से पार्टी का आदमी है और उपनगर क्षेत्र इसका-केंद्रित कर्म-अपना चुना हुआ है। लेकिन परिणाम में शहरी बाबुओं की तह उनकी उन्नति नहीं हुई है। उसकी ईमानदारी पर किसी को शक नहीं है। राजनीति में दो पैसे न कमा पाने पर अपने बेटे के आगे ही वह बुद्धू है। लेकिन बस्ती में उसकी एक इमेज है। पुराने दिनों में पार्टी का आदमी है और बिना पैसे के आँखों का कैम्प न लगा तो मोतियाबिन्द न कटा पाया। ऐसे आदमी को चुनाव के समय या पार्टी का इमेज नष्ट होते समय नमूने की तरह दिखाने के काम में लाया जाता है। काली साँतरा पिछले साल कलकत्ता जाकर हार्निया कटा आया था। उसके बाद से उसका शरीर कमजोर है। इस समय वह धान कटाने के आंदोलन में गाँव गया हुआ था। किसानों को कृषि ऋण देना होगा-, इसके लिए प्रयत्न किया, 'जिला वार्ता' प्राकाशित की। बहुत जगह वुकपोस्ट भेजी। अभी भी वह स्कूल कमेटी की मीटिंग में ज-ाता है और शहीद दिवस के अनुष्ठान में जिले के हाकिम के पास बैठता है। लेकिन आजकल फूटे बर्तन में पानी भरने की तरह बेकारी की अनुभूति उसे खिन्न कर देती है। काली साँतरा समझता है कि उसकी बस छूट गयी है। पार्टी ने उसका उपयोग किया। उसके उजले कपड़े पहनने पर पार्टी के सफल मेम्बरों को जैसे दुःख होता है वे नीरव दृष्टि से तिरस्कार करते। सबका विश्वास था। पार्टी के बाहर सबके सब घर नैकरी-कुछ होने की बात थी-, प्रतिष्ठा अख़बारों में-अकेले काली साँतरा की छींट की कमीज़-खबर, अधउजली धोती और बाटा का टिकाऊ जूता पहनकर अच्छे कार्यकर्ता की तरह लड़ते रहने की बात थी।

इस तरह के कारणों से आजकल क्रांतिदिवस पर भी काली साँतरा के कलेजे में आवेग-नहीं नाच उठता था। क्रांति और समाजवाद लैंम्पपोस्ट की ओट में खड़ा है उसे पुकार कर लाने भर की जरूरत है इस बात पर वह अकेला विश्वास करता है, यह काली साँतरा को नहीं मालूम था। अब उसे अपना थलग लगता। अकेलेपन का घूँघट वह हटा न-आप बहुत अलग-पाता, और पार्टी की मीटिंगों में तो नहीं ही हटा सकता था। अब जो बातें अबेरे सवेर उठतीं वे-भले कार्यकर्ता के जीवन की गोधूलि बेला में बड़ी मर्मांतक होती हैं। ब्लॉक के कुएँ से डोम

लोगपानी नहीं भर सकेंगे , यह देखकर, विधवा साथिन से ब्याह करने गाँव के स्कूल में नित्य काली साँतरा के मन में होता (विधवा ब्राह्मणी थी) जीवन दलूइ को हटाये जाते देखकर- इस देश में क्रान्ति बड़ी भारी क़िस्से की पोथी नहीं- कि आरंभ का संग्राम ही विफल हुआ है, पान का पत्ता मात्र है। इस तरह की नैतिक बातें उसके मन में उठती हैं , इससे उसे निराशा होती। वह क्रांतिदीक्षित है-, उसके मन में क्या इस तरह की बातें उठना ठीक है ?

गिरिश कर्नाड

गिरीश कर्नाड (जन्म:19 मई, 1938) एक जाने माने कवि, रंगमंच कर्मी , कहानी लेखक, नाटककार, फ़िल्म निर्देशक और फ़िल्म अभिनेता हैं। गिरीश कर्नाड को 1994 में साहित्य अकादमी पुरस्कार, 1998 में ज्ञानपीठ पुरस्कार के अलावा पद्म श्री और पद्म भूषण से सम्मानित किया जा चुका है। उन्हों ने हिन्दी में उत्सव, मंथन, इक़बाल, डोर जैसी फ़िल्मों में काम किया।

जीवन परिचय

गिरीश कर्नाड का जन्म 19 मई, 1938 को माथेरान, महाराष्ट्र में हुआ था। बचपन से उनकी रुचि नाटकों की तरफ थी। महाराष्ट्र में जन्में गिरीश ने स्कूल के समय से ही थियेटर से जुड़कर काम करना शुरू कर दिया था। कर्नाटक आर्ट कॉलेज से स्नातक करने के बाद वह इंग्लैण्ड चले गए। जहाँ उन्होंने आगे की पढ़ाई पूरी की। इसके बाद गिरीश कर्नाड भारत लौट आए और चेन्नई में ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी में सात साल तक काम करने के बाद इस्तीफा दे दिया। इस दौरान वह चेन्नई के कई आर्ट और थियेटर क्लबों से जुड़े रहे। इसके बाद वह शिकागो चले गए जहाँ उन्होंने यूनिबर्सिटी और शिकागो में बतौर प्रोफ़ेसर काम किया। तत्पश्चात गिरीश भारत दुबारा वापस लौट आए और अपने साहित्य के अपार ज्ञान से क्षेत्रीय भाषाओं में कई फ़िल्में भी बनाईं और साथ ही कई फ़िल्मों की पटकथा भी लिखी।

कार्यक्षेत्र

गिरीश कर्नाड केवल नाटककार ही नहीं, अभिनेता, फ़िल्म निर्माता, कहानी लेखक और समाज की आधुनिक समस्याओं को उजागर करने वाले महान साहित्यकार हैं।

साहित्य

उनका विचार था कि वे कवि बनेंगे , परन्तु जब छात्रवृत्ति लेकर आक्सफ़ोर्ड गए , तो उन्होंने नाटकों की ओर रुझान दर्शाया। उन्होंने पहला नाटक कन्नड़ में लिखा और उसके बाद उसका अंग्रेज़ी अनुवाद किया। उनके नाटकों में 'ययाति', 'तुग़लक', 'हयवदन', 'अंजु मल्लिगे',

'अग्निमतु माले', 'नागमंडल', 'अग्नि और बरखा ' आदि बहुत प्रसिद्ध हैं। गिरीश ने कन्नड़ भाषा में अपनी रचनाएं लिखीं। जिस समय उन्होंने कन्नड़ में लिखना शुरू किया , उस समय कन्नड़ लेखकों पर पश्चिमी साहित्यिक पुनर्जागरण का गहरा प्रभाव था। लेखकों के बीच किसी ऐसी चीज़ के बारे में लिखने की होड़ थी जो स्थानीय लोगों के लिए बिल्कुल नयी थी। इसी समय कर्नाड ने ऐतिहासिक तथा पौराणिक पात्रों से तत्कालीन व्यवस्था को दर्शाने का तरीका अपनाया तथा काफ़ी लोकप्रिय हुए। गिरीश कर्नाड के नाटक ययाति (1961, प्रथम नाटक) तथा तुग़लक़ (1964) ऐसे ही नाटकों का प्रतिनिधित्व करते हैं। तुगलक से कर्नाड को बहुत प्रसिद्धि मिली और इसका कई भारतीय भाषाओं में अनुवाद हुआ। इनकी कृतियों में जहाँ भारत का पुरातन झाँकता है , वहाँ आधुनिकता का भी सम्मिश्रण है। इस प्रकार साहित्य से सम्बन्धित अनेक क्षेत्रों में काम करने के कारण गिरीश कर्नाड ने कन्नड़ साहित्य को ही समृद्ध नहीं किया, हिन्दी साहित्य भी उनकी देन से अछूता नहीं है।

सिनेमा

गिरीश कर्नाड एक सफल पटकथा लेखक होने के साथ एक बेहतरीन फ़िल्म निर्देशक भी हैं। गिरीश कर्नाड ने वर्ष 1970 में कन्नड़ फ़िल्म 'संस्कार' से अपने फ़िल्मी कैरियर की शुरुआत की जिसकी पटकथा उन्होंने ही लिखी थी। इस फ़िल्म को कई पुरस्कार मिले जिसके बाद गिरीश ने कई फ़िल्में की। उन्होंने कई हिन्दी फ़िल्मों में भी काम किया , जिसमें निशांत, मंथन, पुकार आदि प्रमुख हैं। गिरीश कर्नाड ने छोटे परदे पर भी अनेक महत्त्वपूर्ण कार्यक्रम और 'सुराजनामा' आदि सीरियल पेश किए हैं। उनके कुछ नाटक जिनमें 'तुग़लक' आदि आते हैं, सामान्य नाटकों से कुछ भिन्न हैं। गिरीश कर्नाडसंगीत नाटक अकादमी के अध्यक्ष भी रह चुके हैं।

सम्मान और पुरस्कार

1. 1972 में संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार
2. 1974 में पद्मश्री
3. 1992 में पद्मभूषण
4. 1992 में कन्नड़ साहित्य अकादमी पुरस्कार
5. 1994 में साहित्य अकादमी पुरस्कार
6. 1998 में ज्ञानपीठ पुरस्कार
7. 1998 में कालिदास सम्मान

- इसके अतिरिक्त गिरीश कर्नाड को कन्नड़ फ़िल्म 'संस्कार' के लिए सर्वश्रेष्ठ निर्देशक का राष्ट्रीय पुरस्कार भी मिल चुका है।

एक श्रेष्ठ अभिनेता, निर्देशक औक फिल्मकार के रूप में स्वयं को सिद्ध कर चुके प्रसिद्ध रचनाकार गिरीश कर्नाड अपने को मूलतः और अन्ततः नाटककार ही मानते हैं।

1970 में इन्हें सर्जनात्मक कार्य के लिए 'भाभा फैलोशिप' प्रदान की गई। इसी के तहत 'हयवदन' की रचना हुई। लोक रंग - त्तवों के सार्थक प्रयोग से स्त्री-पुरूष संबंधों की जटिलता और सम्पूर्णता की तलाश की मृग मरीचिका को नाटककार ने 'कथा सरित्सागर' की एक कथा के बहाने अपनी नई नाट्य- रचना 'हयवदन' में रोचकता के साथ रेखांकित किया। 1971 में प्रकाशित 'हयवदन' को 1972 में ब.व. कारंत ने 'दिशांतर' (दिल्ली) और सत्यदेव दुबे ने 'थियेटर यूनिट' (मुम्बई) की ओर से लगभग साथ-साथ पेश किया । अलग-अलग प्रस्तुति-शैलियों के बावजूद दोनों प्रदर्शन कलात्मकता एवं लोकप्रियता की दृष्ट से अत्यधिक सफल रहे। बाद में इसे ब.व. कारंत ने दो बार कन्नड़ और दो बार हिंदी (लखनऊ-भोपाल) के अलावा आस्ट्रेलिया में भी अभिमंचित किया । जर्मनी में इसे विजया मेहता ने किया था। 'हयवदन' समकालीन भारतीय रंगमंच में मील का पत्थर सिद्ध हुआ जिसे प्रकाशन के बाद 1971 में ही भारतीय नाट्य संघ द्वारा गिरीश कर्नाड को श्रेष्ठ पुरस्कार का 'कमला देबी पुरस्कार' प्रदान किया गया।

हयवदन

गिरीश कर्नाड, विजया मेहता और भास्कर चन्दावरकर जैसे समकालीन भारतीय रंगमंच के तीन दिग्गज जब एक बिन्दु पर आ मिलें तो सृजन के किसी नये आयाम के उद्घान की जिज्ञासा और अपेक्षा स्वभाविक ही है। इसलिए हाल ही में संगीत नाटक अकादमी की ओर से जब विजया मेहता निर्देशित गिरीश कर्ना के सुप्रसिद्ध नाटक हयवदन के खानोलकर कृत मराठी अनुवाद के श्रीराम सेंटर में प्रदर्शन की घोषणा की गई तो दिल्ली के सूखे-सूने रंग-मौसम में एक हलचल-सी मच गई। प्रतिभावन संगीतकार भास्कर चन्दावरकर के संगीत से सजी-संवरी 'द नेशनल सेंटर फ़ॉर द परफौर्मिम आर्टस ' तथा 'द गोआ हिन्दू एसोसिएशन' की इस संयुक्त चर्चरत प्रस्तुति को देखने के लिए रंग-प्रेमियों का एक सैलाब-सा उमड़ आया। नई व्याख्या, मौलिक प्रस्तुति - शैली और लोक एवं संगीत के रचनात्मक रंग तत्वों के कल्पनाशील इस्तेमाल के निर्देशकीय दावों ने इस जिज्ञासा और अपेक्षा को अत्याधिक तीव्र कर दिया।

बेताल पच्चीसी और टॉमस मॉम की कहानियों पर आधारित गिरीश कर्नाड लिखत 'हयवदन' लोक-शैली का एक श्रेष्ठ आधुनिक नाटक है। देवदत्त और कपिल के बीच भटकती पद्मिनी की खोज और त्रासदी अपने मूल रूप में व्यक्ति द्वारा पूरेपन की अर्थहीन अनंत तलाश की त्रासदी है जो कहीं न कहीं 'आधे अधुरे' जैसे स्त्री - पुरूफ सम्बन्धों के नाटकों के बहुत नज़दीक पड़ती है। विजया मेहता की प्रस्तुति में खाली मंच है, यवनिका है, मुखौत है, कठपुतलियां हैं, कलाकारों का खुला आवागमन एवं सशक्त अभिनय है, बोलियों का सर्जनात्मक इस्तेमाल है, गतियों और संयोजनों की बारीकियां हैं, प्रभावी गायन हैं, अद्भुत संगीत है, कल्पनाशील प्रकाश-योजना है, कई दृश्यांश अविस्मरणीय हैं। निर्देशन में सूक्ष्मता है-प्रदर्शन में रोचकता है, कसाव है, वह बांधने में समर्थ है। विश्वास होता है कि बर्लिन समारोह में विदेशी प्रेक्षकों को भी प्रभावित करने में सफल होगा। परन्तु इन तमाम विशेषताओं के बावजूद प्रदर्शन में व्याख्या का तथाकथित नयापन (पद्मिनी में 'शक्ति' का रूप इत्यादि) दिखाई नहीं देता और न ही यह प्रस्तुति समग्र -प्रभाव की दृष्टि से कारंत और सत्यदेव दुबे के पूर्व-प्रदर्शनों के असर को धूमिल कर पाती है। कारंत की शैली की प्रमाणिकता और दुबे की रमणीयता-तार्किकता का अपना सोन्दर्य और असर था। ऐसा लगता है विजया अपनी बातचीत और उपस्थिति से जितना प्रभावित करती हैं, प्रस्तुति से शायद उतना नहीं कर पातीं। यह बात उनके होली के प्रदर्शन से भी सिद्ध होती है, जिसे उनहेंने राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के तृतीय वर्ष के छात्रों के साथ प्रस्तुत किया था। छात्र-वर्ग की ऊर्जा और ऊष्मा, अनुशासनहीनता और कमजोरी, विरोध, विद्रोह, आतंक, कुणठा, भटकाव, विकृति, निराशा और दुःख इत्यादि को आकामक तेवर में पेश करने वाले महेश एल्कुंचवार के छोटे नाटक 'होली' के वसंत देवकृत हिन्दी अनुवाद को विजया मेहता ने बडे सादे और दिचस्प ढंग से प्रस्तुत किया, परन्तु समग्रतः उसका भी कोई गहरा, तीखा और उत्तेजक प्रभाव गम्भीर प्रेक्षकों-समीक्षकों पर नहीं पडा था। दिल्ली में कुछ वर्ष पहले प्रदर्शत उनके अभिनीत-निर्दशित बहुचर्चित 'संध्या छाया' को भी सामने रहकर कहें तो कहना होगा कि विजया मेहता की प्रस्कततियाँ आकर्षक अधिक हैं, उत्तेजक कम।

सीताकांत महापात्र

परिचय

आधुनिक भारतीय कविता के समर्थ कवि सीताकांता महापात्र का जन्म सन् 1937 में ओडिशा में हुआ। अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त श्री महापात्र ने उत्कल, इलाहाबाद तथा कैंब्रिज विश्वविद्यायों में शिक्षा प्राप्त की । 1975-77 में होमी भाभा फेलोशिप पाकर सामाजिक नेतृत्व विज्ञान में डॉक्टरेट की उपाधि। वर्ष 1961 से भारतीय प्रशासनिक सेवा से संबद्ध।

अब तक बारह काव्य-संग्रह ओड़िया में, छह यूरोपीय भाषाओं, दस हिंदी में, तथा आठ संग्रह अंग्रेजी में अनूदित होकर प्रकाशित। अन्य भारतीय भारतीय भाषाओं में भी काव्य-संग्रहों के नौ संग्रह अंग्रेजी में प्रकाशित। कविताओं के अलावा आलोचनात्मक निबंधों के चार संग्रह भी ओडिया में प्रकाशित।

सन्.1993 के भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित। इसके अलावा केन्द्र साहित्य अकादमी पुरस्कार, सारला पुरस्कार, कुमारन आशन पोयट्री पुरस्कार, ओड़िशा साहित्य अकादमी पुरस्कार, सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार तथा विषुद सम्मान से सम्मानित।

संप्रति सचिव, संस्कृत विभाग, भारत सरकार के पद पर कार्यरत।

(अ) प्रकृति - वर्षा की सुबह, दूब

1. वर्षा की सुबह

आया है वर्षा-काल
घन बरसता लगातार
बज रही दुंदुभि बादलों की
काँप उठी है सुबह।।

लग-लगकर कोमल अँगुलियाँ
बारंबार वर्षा की मियचुके हैं सफेद अक्षर कई
फाटक की नीले नामपट्ट से।।

भीगा हुआ जाता है स्कूल बालक एकाकी,
पर बंद हैं किवाड़ खिड़कियाँ सारी

राह किनारे सभी घरों की
मानो महीं है कोई उस गाँव में अनंतकाल से
हो गए हों तितर-वितर सभी
भय से वर्षा के
सुन पडता है प्रहार वज्र का
घुप्प काले बादलों के लोहारखाने से।।

सोया है घर में कौन ?
उदास माँ-बाप ? निश्चिंत समय ?
गाढ़ी काली मृत्यु का भय ?
देख घटा मोर की तरह हैं अधीर
मृत्यु और बालक के मन।।

खत्म हुई छुट्टियाँ बालक की
आ पहुँची घडी यह समझने की
चुक जाते हैं सुख सारे कभी न कभी
आई है वर्षा अब
मृत्यु है लंबी छुट्टी पर
दूर परदेस में,
विरही जीवन चाहता है खो जाना चुपके से
बादलों के शुभ्र मल्हार करूण राग में।।

आ जाता है खुद ही पकड़ में स्वप्न
राह भूली तितली-सा,
एककाकी बदरारी लग्न में कुछ सोच उठ खड़ी होती हो तुम
करती हो इस्त्री पोशाक मेरी
टाँग देती हो उसे
(मानो अगले जन्म के लिए)
वहाँ अरघनी पर लगती है जो
किसी धुले-उजले कंकाल-सी।।

2. दूब

दूब,दूब पहचानता हूँ तुझे

हुत्-हुत् जलता सूरज और आकाश
निश्चल शांत मेदिनी
है कितना अद्भुत भरोसा तुझे
है कितना विश्वास
पीकर जरा-सी ओस
दिन-दिन भर, रात-रात,
घुटरून चलना, घिसटते हुए
कुआँ-कुआँ रोना और हाँफना
सुना है सुना है
रेत में अँगुली भर आगे
विकल प्राण का बरताव
पहचाना है पहचाना है
दुबली-पतली हरी देह में तेरी
आनंद और यंत्रणा का शिलालेख
खरोंच-खरोंचकर पढ़ा है मैंने सदा।।

देख मेरी ओर
कोमल पत्ते की आँखों से
किसलिए घिसटता हूँ मरूथल में
शून्यता से शून्यता
अँधेरे से घर अँधेरे में
प्रथम कुआँ-कुआँ के जापाघर से लेकर
शब्दहीन शेष घडी तक।।

बीच में यही बँधे-बँधाए कुछ पल
अबूझ फिर भी आस्वाद,
कैसा यंत्रणा, कैसा अंधकार
फिर भी है आह्लाद।।

दूब, दूब
यह आकाश चाँद और ओस
दूब, दूब
नारी ओर नक्षत्रों की नील रात्रि
पवन का स्नेह से सराबोर स्वर

दूब, दूब
क्षुधा, तृणा, प्रतीक्षा का अंतहीन उनींदा प्रहर
साथ-साथ रमें हैं
सखी मेरे प्राणों की अपनी।।

(आ) सामान्य जीवन - (अधेड) (हम)

1. अधेड

जल की स्वच्छ करूणा
हवा का सरल आनंद
छोड़ आया है वह
स्कूल की किताबों में,
कामना का कंटकित प्रस्फुटित गमकता वन
उन्माद का तीव्र उल्लास और दंश
छोड आया है वह
प्रथम प्रेम की गली के मोड में।।

अब है महज धूल, पसीना, खीझ
जेढ की गर्म हवा में
कराता है इंतज़र वह
आषाढ़ का, बादलों का।।

कभी-कभी मानो कोई रोता है भीतर
शायद कुछ याद कर-करके
बच्चे नहीं है, गृहिणी गई है पडोस में
चारों ओर सूनेपन का अखंड राज है
लंबी दुपहर पड़ी है
साँझ होने में अभी देर है।।

आम के पेड़ पर बैठी रो-रोकर
बुला रही है एक कबूतरी
सेर भर गया, माँण भर गया, उठ रे पूता
किंतु सब अपूर्ण रहता है

कोई भी शून्यता नहीं भरती।।

स्कूल से, कालेज से लौटने में
अब भी देर है बच्चों के
अशांत, धूल-धूसरित रास्ते में किसी से मारपीट
किसी पर पत्थर से सिर फटा होगा
उसके भीतर की अलसायी हिंस्त्रता
हमेशा उभरी है
उनके चेहरे पर, भाव-भंगिमाओं में।।

फिर एक बार देखता है वह घडी
सूर्य को थोडी भी जल्दी नहीं लौट जाने की
उसी तरह मरी मछली के पेट-से लटका है
निष्करूण पश्चिम आकाश में
गोधूलि की लालिमा में काफी देर है
रात और अँधेरे का आश्वासन है काफी दूर।।

सुनाई पड़ता है रह-रहकर अब भी
कोयल का आखिरी गीत
खुशी से पहले की तरह
रो नहीं पा रहा अब
खुद-ब-खुद नहीं भर आती आँखें।।

सीढ़ी-दर-सीढ़ी
दृढ़ विश्वासी हो पग बढ़ाता है
नीले आकाश, शीर्ष को ताकता
सीढियाँ चढ़ना खत्म हो जाने पर
है अब खीझ का शून्य समतल।।

बैठा रहता है वह घड़ी पर आँखे टिकाए
परित्यक्त मंदिर की कौतुक भरी
वजनदार मूर्ति-सा
जो अबोध शिशु-सा
ताकता रहता है शून्य को

पर न हँस पाता है,
न रो पाता है।।

2. हम

मिट्टी के गरभ में, सीने के हाड़ तले
तमाम अँधेरा लबालब भर जाने पर
तमाम काली रातें,तमाम दुःख
और संताप की आँच उफन पडने पर
एक धान अँकुराता है, एक शब्द से अर्थ फूटता है
हरा पत्ता बोल उठता है, अर्थ गुनगुनाता है
हम जानते हैं भाई, हम जानते हैं।।

सूने खेत में,सन्नाटा भरे शून्य में
काम है हमारा सिर्फ रोपते चले जाना
अर्थ के बोझ से झुकते जा रहे
आँसुओं से लथपथ, मुस्कान से सराबोर
जादुई शब्द पास-पास
गर्दन झुकाए, कमर तोडे, झुककर जलाते जाना
अँधेरी रात में, काले बादलों तले
एक-एक कर नन्हे-नन्हे शब्दों की बाती
मच्छर डाँस, जंगली घास
ऊसर मन की अनबुझ प्यास
अबुझ उदासीनता के चाबुक की मार
हवा, बतास पीड़ा, जाड़ा
भाई रे हम जानते हैं, हम जानते हैं।।

नीचे सर्वसहा पुराण अक्षर माटी
ऊपर तारों-भरा मोर - नील आकाश
वही है वह खुला पडा कविता ता मुक्त आँगन
हरित हृदय-प्रवेश
दीवार या खाई, फाटक या घेरा नहीं
स्वर्ग-नरक, शत्रु-मित्र, हँसी-रूलाई, धूप-छाँव
सारे दुःख, सारे शोक, सारी हँसी अनभूली

सबकों दिल खोलकर, हँसते हुए खिल-खिल,
हाथ उठाए चिरकाल
भाई रे हमने पुकारा है, हमने पुकारा है।।

हमारी पुकार सुन
झुक आते चारों मेघ,
पूर आकाश को ढक,
सूखी जड़ों में पानी डालते
ब्रह्मा मंत्र पढ़ते
शब्द लगते हैं सिहरने, लहराते हैं
हवा बहती है सिलसिल लुकाछिपी खेल-खेलकर
सूर्य तारे सो जाते हैं ओस की ढुलमुल बूँदों-से
सहज शब्दों की गोद में गूढ़ अरेथों में।।

कितने जन्म कितनी मृत्यु लग जाती है
कितने युग बीत जाते हैं नहीं होता खेल खत्म
कितना खून क्तने अश्रु
कितनी खुशियाँ कितनी सिसकियाँ बीत जाती हैं
मन तो नहीं मरता
सूर्य, चंद्र, मिट्टी, पानी, हवा की महक से
गुनगुनाते हैं शब्द व्यंजना लिए अर्थ की
इस देह के पेड़ की डाल पर
पत्ते फूल और फल लगते हैं
पेड़ तो नहीं मरता
कैसा जादू कैसा अद्भूत आनंद और
वेदना का अभिषेक !
भाई रे हम पहचानते हैं, हम पहचानते हैं।।

यदि कभी अकाल पड़ता है, जमीन फटती है
हृदय मर जाता है, शब्द का अर्थ चुक जाता है
सुनासान खेत में पौधा मुरझा जाता है,
मन उदास हो उठता है
एक अधमरी चिड़िया चोंचखोलती है
हम स्र पर हाथ धरकर बैठ तो नहीं

यदि हवा बारिश गरजती हुई आए
काली जीभ से हरा रस, शब्द -हँसी चाट जाए,
हम किसी पर दोष मढ़कर बैठे तो नहीं रहे
उदास आकाश तले, म-त्यु शोक वेदना की भीड़ में
हमारा भाग्य हम खुद ही हैं भाई
जानते हैं, हम जानते हैं।।

तोराणि[1] पर पड़ रही है परछाईं
सुदूर पहाड़ के साम्राज्य की
मुकुट और राजदेड, धर्मग्रंथ नामावली
विक्षोभ और रक्तपात, नारे और तालियाँ
अंतहीन अर्थहीन भाषण की
शेषहीन विद्वेष की
नन्हे शिशु शब्दों ने
आँख खोल देखी है
लगाकर कान सुनी है
खनक तलवार की देखे-सुने हैं बिगुल और मार्चिंग गीत
रुलाई और संकीर्तन न जाने कितने गायत्रीमंत्र
पकडो-पकडो, मारो-मारो की चीत्कीर और रिरियाहट
"मैं आया, मैं आया!" की आवाज नवजातक की
खाली पड़े खेत की सूखी छाती में,
हमारा काम है सिर्फ रोपते चले जाना
सुकुमार पौधे, हँसी के फव्वारे पास-पास
वेदना मृत्यु ऊसर जमीन में हमारा काम है केवल जोड़ते चले जाना
सांत्वना भरे सरल शब्द
एक-एक कर पास-पास
भाई रे हम जानते हैं; हम जानते हैं।।

(इ) असीम - अनंत - आकाश, उस पार

1. आकाश
पेड़-पौधों, गाँव-द्वारा से बना है
जो नील दिगंत सुदूर,

[1] बासी भात का पानी (पखाल)

उसी पर कभी एक थके-हारे पथिक-सा
कभी उतावले प्रेमी-सा
छुका होता है जो
उसी का नाम है आकाश।।

नहरे खेत के एकाकी ताड़ वृक्ष को
इतनी सुंदर शून्यता के प्रेम में
बाँधे रखता है जो
माँ यशोदा बन
बाल कृष्ण को
भींचकर अपनी गोद में
उसी अनभूली स्नेहमयी
विभूति का नाम है आकाश।।

सन् सन् शून्य छाती पर
अकेले घर लौटते निर्जन
कतार के कतार, झुंड के झुंड
पक्षियों को उडा देता है,
हँसाता है, रिझाता है, नचाता है
रंग-रविरंगे बादलों को,
पल में घुप्प काले बादलों की छाया में
नचाता है मोरों को, रूलाता है प्रेमियों को
सिंदूर के टीप-सा थाप देता है
सारे सृष्टि के जनक सूर्यदेव को,
ब्रहमचारी के ललाट पर चंदन के टीके-सा
पूनो के चाँद को,
राह छोड़ देता है
चौतरफा अधीर हवा के लिए
उसी सज्जन जादूगर का नाम तो है आकाश।।

हर जगह होता है-
सैकडों जलघटों में गोष्पद सलिल में
निर्जन सिंधु में, झिलमिल ओस की बूँद में
हालाँकि कब नहीं था-कहाँ नहीं होता

उसी अंतिम अनुपस्थिति का नाम तो है आकाश।।

कार्यऔर कारण का,
जनम और मरण का क्रीतदास,
पग-पग पर हँसी-रूलाई,
हानि-लाभ कर्मवश
देखता हूँ मैं शून्यता को
ओर पूछता हूँ,
आत्माराम, शून्यता ओ निरंजन
बनूँगा नहीं क्या मैं कभी आकाश ?

2. उस पार

उस पर लगा रहता है मोह।

इस पर के दिन -रात, माटी और ओस
इस पार के हँसी, रूलाई, घृणा और स्नेह
पानी में हिलाती परछाइयों की तरह
जाने - पहचाने लोगों के चेहरे और यादें
सुबह, साँझ, गोधूलि,शब्दहीन नक्षत्रों की रातें,
इस पार की सारी लाभ-हानि, सारी क्षय-क्षति
इस अधीर हृदय को नहीं बाँध पाते ज़रा भी
भाई बंधु, सगे-संबंधी।।

उस पार मानो सब दीखते हैं
स्वच्छ हवा के शून्य आईने में
सारे दृश्य, सारे शब्द, सारे क्षय, सारी क्षति
लाभ-हानि, हँसी-रूलाई लाख जनम के
जैसे कि सारा जीवन महज उतावली प्रतीत्रा है
पानी, बालू, घास पार कर
इस पार से उस पार जाने की
गोकुल, मथुरा, द्वारिका, माखन, बंशी और चक्र सारे पारकर
पहुँचने की उसी स्वप्नमय मंत्रमुग्ध अनजाने नगर में।।

जैसे ही पहुँचेंगे उस पार,
नया जन्म होगा इस शरीर का
इस इंद्रिय पंचभूत बुद्धि और मन का
हृदय, अस्थि, चर्म, चर्बी, माँस, रक्त और आत्मा का,
जैसे ही पहुँचेंगे
फूलों की तरह देह मन विकसित होगें
बारिश में कदंब की तरह खिलेंगे हुलसित होगें
जिस तरह उचक रहा था उस पार का स्वरूप हमेशा
या स्वप्न जागरण निद्रा तंद्रा समस्त प्रहार।।

पानी में पैर बढ़ाता हूँ, पानी बन जाता है नाव
लगता है कई जनमों का वही परिचित बंधु
बालू में पैर थापता हूँ, बालू बन जाती है नाव
लगता है अपने ही रक्त की, माँस की
घास मेरी देह में पसर जाती है घास की नाव बन
फुनगी से फुनगी पर कूदती है जनम से मरण तक
बालू, पानी और नदी है इस देह के मुक्त-क्षेत्र।।

आ जाता है, वह पार सहसा
चिर ईप्सित स्वप्न का रूपायन
पर रोता है वही पुराना दोहरा स्वर
पुरानी मिट्टी पानी घास और ओस
यह तो है वही रोज़-रोज़ की
हँसी, रूलाई, घृणा और स्नेह !

छोड आए उसी पार
धुँधली चाँदनी में, धूप में, तारों में
खुशी में, आनंद में, क्षोभ और विषाद में
हाथ के इशारे से बुलाता रहता है मुझे
न जाने किस जनम से
मोहनी अमृत कलश लिए बुलाता है
स्वप्न जागरण उलाँघ, जीवन मरण उलाँघ
अनजाने में उस पार से हो जाता है मोह,
वह पार होता है यह पार,

कौन देता है भुलवा चिरकाल।।

क्या नहीं हो सकती ऐसी नदी
जिसका सिर्फ़ एक ही किनारा हो ?
क्या नहीं हो सकता ऐसा सपना जिसका आदि अंत न हो
जडे हों जिसकी शून्य में ?

(ई) मानवीय राग-

1. सारी बोतों के बाद

उज्ज्वल चाँदनी तोड़ रही है लहरें
खोचती जा रही स्मृति -सी
अधभूले गीत - सी
सिलेटी आकाश में चटिमटिमा रहे हैं यहाँ-वहाँ
झुंड के झुड तारे,
चाँदनी से भीगे हुए
बिजूखे की तरह खडे महुए के पेड़ से
असंख्य फूल अब झर रहे हैं, झर रहे हैं चुपचाप।।

तू जानती है
आँखों से आँसू पोंछने पर
आँसू फिर उमड़ पड़ेगे
टहनी से फूल झर जाने पर,
होंठ से कोई बात उड़ जाने पर
टहनी पर, होंठ पर कभी नहीं लौटेंगे।।

हर वक्त ठगकर डाल को, वृंत का
झड़ जाता है फूल नीचे
हर व्कत न जाने किस अभिमान से, किस दुःख से
बात उड़ जाती है, उडते-उडते खो जाती है
जिद्दी नन्ही चिडियों की तरह नीले क्षितिज में।।

धाँगड़ा के वायदे ने यदि

उड़ आकर बनाया था घोंसला कभी
कुँआरी के मन में
तेरे सपने के पत्तों के बीच,
धाँगडा की बातें यदि
जिद्दी चिड़िया की तरह
चुपचाप उड़ गई आकाश की ओर
नहीं लौटीं फिर शाम के बाद रात होने तक
उसके गीत का मतवाला स्वर यदि
फिर सुनाई नहीं दिया
धाँगड़ा-घर से,
यदि आज झीना कोहरा लाँघ
अस्पष्ट साये की तरह
कमर से हाथ हटाकर
कुछ कहे बिना
छोडकर वह चला गया
इतना सुंदर नाच बीच में ही
अब यदि दोस्त - यार, साथिन लौट गई
चुपचाप अपने - अपने घर
आग की लौ बुझ चली नाच - मंडप से
एकाकी कबूतरी अब यदि
रोती है जंगल किनारे
न बोल तू कोई शब्द री धाँगडी
कोई बोल तक नहीं फूटता कभी
महुए का फूल झरते समय
कुछ कहता नहीं
मुरझाया चाँद
पहाड के मचान से अस्त होते समय।।

ओंखों से आँसू पोंछ ले
खोल ले केश
खड़ी हो जा चाँदनी से भीगकर
महुआ तले बिजूका-सी
फूल झरते रहें
स्वच्छ. सुंदर ठोस तेरी दीर्ध देह में

पोंछ दे चाँद , तारे समग्र आकाश
शेष सरलता-से प्रचंड काले बादल
अपने आँस, अपने खुले केश।।

ऐसी ही तो है चिरकाल स्नेह का उद्यपन पर्व
ऐसी ही तो है हँसी- रुलायी, नाच-गीत, दिवस-रात्रि।
कौन - से प्रश्न किसके लिए
भला कौन देगा उत्तर
दर्मू,[2] या दर्तनी[3] या देवता दिशारी[4] ?

(उ) जीवन बोध -

1. मृत्यु

आना हो तो आओ
क्या मालूम नही तुम्हें
तुम्हारे उस आकाश का ओर
उन्मुख हूँ मैं हंमेशा से
आओ, आकर बैठों मेरे पास।।

धूल में धूसर आत्मा सिर्फ रोती है
आनंद से दिन - रात वही विमुग्धा पुतली
आनंद से, आँसुओं से, राधा-सी
सदा वह पगली।।

पहाड़ के मचान पर, सुदूर उपत्यका में
बेमौसम बरसात में
करुण साँझ की किस उदास बाँसुरी की पुकार से
अप्रतिभ पवन में, बावली सुबह में
उड़ा है चिड़िया बन यह हृदय
है आकाश तो बहुत दूर।।

---

[2] आदिवासियों के आकाश में रहनेवाले देवता
[3] आदिवासियों की धरती माँ
[4] आदिवासियों के पुजारी

घास बन, धूल-अंगार को नए
सपनों की हरियाली से ढाँप
फूल खिलने से पहले
धूप का गुस्सा सह
हुआ है यह हृदय चिरकाल दग्ध
घोर तूसानल से
चर्म - घिरे चौरासी अन्नमय पिंड लिए
हाट-बाज़ार की क्षुधा तमाम अंगार राख
पीठ पर लादे कछुआ -सा
नीरवता-वामन के तृतीय डग से हाय
घुसी है पालात में चिरकाल।।

आना हो तो आओ
मोतियाबिंद से घिरी आँखों से
पोंछकर सारी धूल ओर अंगार
मेरी आत्मा से
क्या तुम्हें नहीं मालूम
मैं हूँ तुम्हारी ही प्रतीक्षा में
आँखए खुली हैं जिस दिन से ?
दबे पावँ चले आओ,
पास बैठो जरा।।

2. एक किशोर की मृत्यु

नहीं आता है पकड़ में हिरन
चारों ओर चम-चम तलवार - सीतेज धूप
छिन में दिखाई देकर
अदृश्य हो जाती है छिन में
मायावी उस मृग के पीछे
अभागा, कितना दौड़ेगा बेचारा।।

किसकी माया से
निष्पाप, निर्लोभ और निष्ठुर

दिखाई देती हैं दसों दिशाएँ
शुभ्र और निर्वाक् धूप में
रुआँसी- रुआँसी-सी दिखती हैं चारों दिशाएँ
दबी-दबी सी सिसकयाँ सुनाई देती हैं चारों ओर
सहसा बंद हो गई पल में
समय की धुकधुकाती छाती।।

कल सब ठीक हो जाएगा खुद-ब-खुद
सारे दोस्त रोज़ की तरह
अपनी साइकिलें, क्रिकेट, ब्रल और बैट
क़ॉमिक और यादों भरी शून्यता लिए आ पहुँचेंगे।
दबी आवाज़ में सुनाई दे रहा होगा उसका नाम
खेलने बुला रहे होंगे उसे रोज की तरह
फाटक पर रोज़ की तरह ढूँढ़ेंगे
वेलोग उसे
सामने पसरा होगा धूप और छाँव का
यादों से धूला विस्त-त मैदान।
स्वर पसर गया होगा घर से श्मशान तक
सपने की तरह,फूलों की तरह
उनकी आँखों से लेकर
उदासीन बैकुंठ के
निष्ठुर प्रबु के द्वार तक।।

यह जानते हुए भी कि
खेल शुरू नहीं हुआ
परछाई-सी एक माँ चिल्ला रही होगी
अब बस भी करो आज खेलना,
गीली दाह, गीला सिर
कल हुआ जो था ज्वार।।

उसके दोस्तों को समझा-बुझा रही होगी(या खुद को)
कल आना बच्चों, जी छोटा मत करना
आज वह किसी की भी बात न मान
हाँड़ी जैसे काले भैंसे की पीठ पर बैठ

मंदार की माला पहने
चला गया घूमने
किसी और के घर।।

(ऊ) पुराण - आख्यान के प्रसंग

1. शब्द - रूप

ठीक किया इंद्रद्युम्न
जो खोल दिया बंद किवाड़ वह
अंतर्धान हो गया भास्कर्य
रह गया अधुरा कालिया ठाकुर[5]
ताजे और शुभ शब्दों का।।

वरना क्या कभी खत्म हो पाता भास्कर्य
खत्म हो पाती शबेदों और अक्षरों की कारीगरी
धुकधुकाते साने और सूर्यस्नात माटी का
वह जटिल समीकरण ?
क्या निःशब्द पकडे रख सकता है कोरा कागज
इतने स्वर्ग, इतने नरक, पाप-पुण्य
यातनाओं और आनंद का अनभूला जीवन-मरण ?

गर्भ कष्ट, जन्मकष्ट, जीने का अंतहीन कष्ट
हैं मात्र कुछ शब्द - न खत्म होनेवाले अर्थ और भाव
हाथ बढ़ाता है चिरकाल शून्य आकाश की ओर
उठा लो मुझे, उठा लो मुझे, पुकारता है और
असहाय कागज़ पर शून्यता ही सोई रहती है
स्वप्न, दृश्य दृश्यांतर, जन्मांतर
कारीगर, दारुब्रह्म चिरकाल रह रहे होते हैं
उस बंद कोठरी में साथ-साथ
चिरकाल असमाप्त रहता मूर्ति बनाना
अपूर्ण रहता ब्रह्मा-रूप दर्शन
शब्द-रूप दर्शन

---

[5] कालिया ठाकुरः प्रभु जगन्नाथ

व्यथातुर कोटि-कोटि लोगों का ।।

2. या देवी

अहरह थरथर
तापित दुनिया
राजमार्ग किनारे मैं अधमरी त्रस्त दूब
अनंतकाल से हूँ धूल में अत्म साँसें गिनती
प्यास से विवश,
निर्दयी सूर्य जलता है दाँय-दाँय
जलती है प्यास, आकाश है उदास,
बुझ जाते हैं शून्यता में नाहक ही
उच्चारण मेरे शब्दों के
मुरझाया-प्रयास मेरी आत्मा का
तुम आओ
अभ्यासवश अपना
चिरंतन भुलक्कड़पन भूलकर एक बार
बस आ जाओ एक बार ओ देवी।।

झरना, नदी, समुद्र, बर्फ, ओस, बारिश
जिस रूप में चाहो
सबके अनदेखे रात की ओस बन
दबे कदमों से नववधू-सी आओ
या मेदिनी कँपाती रवैरिणी सागर बन
अपरिकलनीय लोभों में
आत्मा -सी पवित्र और शातल बर्फ बन
अगोरकर और गाड़कर अपने ही गर्भ में
मेरी अंतहीन प्यास
अपने शीत-श्वेत सपने में।।

मेरी अधमरी शिराओं में
उसाँसें हैं मानव इतिहास की लाखों गुहारें की
करोडों सूर्य, नक्षत्र, नीहीरिका जन्म और मृत्यु
मेरी सूखी धमनियों में है अनकहा, अनलिखा

तमाम इतिहास
ग्लानि और कामना एवं
भूख और प्यास का।।

सदियों से पी-पीकर धूल
मैं हूँ यहाँ जीवन - स्वप्न-पिपासा से दग्ध
हीन अकिंचन
तुम आओ, देवी
नीली आँखे, नीली भौंहें, नीली नाभि, नीला स्तन
नीली योनि, सुनिल जाँघ
तुम आओ ओ तृष्णा, ओ रात्रि
ओ भ्रांति, ओ मुक्ति
मुझे मिले नील-स्वप्न, नील - मृत्यु
नील - निर्वापन।।

आधुनिक हिन्दी काव्य

युनिट-।

प्रश्नः-

- 'मातृभूमि' कविता पर अपने विचार व्यक्त कीजिए।
- 'अरूण यह मधुमय देश हमारा' कविता का सारांश लिखिए।
- 'श्रध्धा' का चरित्र-चित्रण व्यक्त कीजिए।
- 'दोनों ओर प्रेम पलता है' कविता के सहारे मैथिलीशरण गुप्त की रचनात्मकता पर विचार प्रकच कीजिए।
- 'वर दे वीणा वादिनी वर दे' कविता की भाषा-शैली पर विचार कीजिए।
- 'वह तोडती पत्थर' कविता का शिल्प विधान स्पष्ट कीजिए।
- 'हमारा देश' कविता का सारांक्ष लिखिए।
- 'विश्वराज्य' कविता का सारांक्ष लिखिए।
- 'जागो फिर एक बार' कविता का उद्देश्य विधान पर विचार कीजिए।
- 'तू बनकर प्रान समा जारे' कविता का भाव स्पष्ट कीजिए।
- 'बापू' कविता के चरित्र विधान पर विचार कीजिए।
- 'आशा की वंशी' कविता का सारांक्ष लिखिए।
- 'कालिदास' कविता के शिल्प विधान पर विचार कीजिए।
- 'सागर मुद्रा' कविता का सारांक्ष लिखिए।
- निराला के काव्यसाधना पर विचार कीजिए।
- 'राहुल-जननी' कविता पर अपने विचार व्यक्त कीजिए।
- 'शिखर पर' कविता का सारांक्ष लिखिए।

आधुनिक हिन्दी काव्य

हिन्दी साहित्य के इतिहास का काल विभाजन

1. आदिकाल (1050 से 1375)
2. भक्तिकाल (1375 से 1700)
3. रीतिकाल (1700 से 1900)
4. आधुनिक काल

आधुनिक काल के अंतर्गत आधुनिक कविताओं का भी समावेश होता है। आधुनिक हिन्दी कविता का प्रारम्भ भारतेंदु युग से माना जाता है। इस समय कविता पुरानी व्यवस्ता को छोड़ नए रूप ग्रहण कर रही थी। यद्यपि अब भी कविता पर ब्रजभाषा का प्रभाव बना हुआ था। भारतेंदु ने कुछ लोगों को इकट्ठा कर एक मंडल बनाया और यह नन्दल काव्य कर्म में नए-नए प्रयोग कर रहा था। समस्या पूर्ती एवं राष्ट्रीयता का स्वर इस काल की कविताओं में विद्यमान था। प्रेमघन, प्रताप नारायण मिश्र, अम्बिका दत्त इत्यादि नए-नए छंदों एवं तरीकों का प्रयोग कर रहे थे। कविताओं में अब पद्य के स्थान पर गद्य और ब्रजभाषा क छोड़कर खड़ीबोली को अपनाया जा रहा था।

भारतेंदु युग के समाप्त होते ही द्विवेदी युग में कविता का स्वरुप एकदम से बदलने लगा। इस युग की प्रमुख पत्रिका सरस्वति में कविताओं खड़ीबोली में छपने लगी और विषयों में नवीनता आने लगी। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने कहा-"कविता का विषय मनोरंजक एवं उपदेशजनक होना चाहिए। यमुना के किनारे केलि कौतूहल का अद्भुत वर्णन बहुत हो चूका है। ना परकीयों पर प्रबंध लिखने का अब कोई आवश्यकता है और न स्वकीयाओं के 'गतगत'की पहेली बुझाने की। चींटी से लेकर हाथी पर्यंत, भिक्षुक से लेकर रजा पर्यंत, मनुष्यबिंदु से लेकर समुद्र पर्यंत जल, अनंत आकाश, अनंत पृथ्वी, अनंत पर्वत सभी पर कविता हो सकती है।" द्विवेदीजी का मानना था की काव्य भाषा सर्वग्राह्य होनी चाहिए। मैथिली शरण गुप्त, गयाप्रसाद शुक्ल सनेही, नाथूराम शर्मा शंकर एवं सियाराम शरण गुप्त, इत्यादि इस युग के प्रमुख कवि थे। हरिऔध इस युग के सक्रीय कवि थे। प्रकृति चित्रण, देशभक्ति एवं राष्ट्र भवना एवं मानवतावादी दृष्टिकोण इस युग के काव्य की प्रमुख विशेषताएं रही। इतिवृत्तात्मकता द्विवेदी युग की प्रधान प्रवृत्ति थी। भारत-भारती, साकेत, यशोधरा, गर्भारंडा रहस्य, प्रियप्रवास, मिलन इत्यादि इस युग के प्रमुख काव्यों में गिने जाते हैं।

द्विवेदी युग के पश्चात जिस नयी काव्यधारा से जन्म लिया वह छायावाद के नाम से जानी गई। प्रसाद, निराला, पंत, महादेवी छायावाद के प्रमुख कवि थे। इनकी रचनायें अपनी विशिष्टता के कारण हिंदी साहित्य में एक महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। छायावाद में व्यक्तिवाद का प्राधान्य, प्रकृति चित्रण, नारी चित्रण एवं, प्रेम तथा सौन्दर्य चित्रण, प्रायः सभी रचनाओं में पाया जाता है। छायावादी काव्यों में रहस्यवाद, लाक्षनिकता, वेदना, राष्ट्रीयता एवं मानवतावाद का स्वर प्रमुख है। जीवन के प्रति बदलते हुए मूल्य और शिल्प विधान का चित्रण छायावाद को श्रेष्ट बाबत है। निराला ने कविता को छंदों से मुक्त कर मुक्त छंद की अवधारणा को जन्म दिया जो छायावाद को अद्वितीय बना डेटा है। पंत का प्रकृति चित्रण एवं प्रसाद का सौन्दर्य चित्रण तथा मानवतावादी दृष्टिकोण तथा महादेवी वर्मा का वेदना भाव छायावाद को उच्चता के शिखर पर पहुंचा देता है।

द्विवेदी युग और छायावाद के साथ ही राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्यधारा का जन्म होता है। जिसमें राष्ट्रीय संस्कृति एवं राष्ट्र भावना से ओत-प्रोत कविताओं की प्रधानता रही। माखनलाल चतुर्वेदी, सियाराम शरणगुप्त, बालकृष्ण शर्मा नवीन, सुभद्रा कुमारी चौहान एवं दिनकर इसी काव्यधारा के प्रमुख कवियों में गिने जाते हैं। जिससे राष्ट्र की स्वतंत्रता में अमूल्य योगदान दिया। छायावादी काव्य की गति मंद हो जाने के बाद प्रगतिवादी कविता का सूत्रपात हुआ। नागार्जुन केदारनाथ अगरवाल, शिवमंगल सिंह सुमन एवं विलोचन आदि प्रगतिवाद के महत्वपूर्ण कवि हैं। वर्ग-संघर्ष, प्रकृति चित्रण, प्रेम, नारी एवं राष्ट्रीय भावनाओं का चित्रण इस युग प्रधान प्रवृत्ति रही। पूंजीवर्ग का विरोध एवं सर्वहारा वर्ग की पक्षधरता को इस युग के कवियों ने अपने काव्य का प्रयोग प्रमुख आधार बनाया।

प्रगतिवाद का स्वर जैसे-जैसे क्षीण पड़ता जा रहा था वैसे ही उसमें से प्रयोगवाद एवं नयी कविता का जन्म हुआ। अज्ञेय ने सभी प्रयोगवादी कवियों को राहों का अन्वेषी बताया। धर्मवीर भारती, शमशेर, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, मुक्तिबोध, गिरिजा कुमार माधुर, भवानीप्रसाद माधुर, नरेश्मेहता एवं रघुवीरसहाय, आदि प्रयोगवाद एवं नयीकविता के प्रमुख उन्नायकों में से हैं। व्यक्तिवाद, अतिनग्न यथार्थवाद, निराशावाद, कुंडा, संत्रास आदि बौद्धिकता, नए मूल्यों का चित्रण तथा उपमानों की नवीनता आदि इस काव्यधारा के वर्ण्य विषय रहे हैं। अनुभूति की सच्चाई, संवेदना, क्षणवाद, व्यंग्यात्मकता, बिम्बों एवं प्रतीकों को जमकर प्रयोग नयी कविता में हुआ। इससे नयी कविता में विविधता एवं नवीनता तो आयी लेकिन धीरे-धीरे लोग इससे डर होने लगे।

उसके बाद अकविता एवं नवगीत का दौर शुरू हुआ। शम्भूनाथ सिंह नवगीत के प्रवर्तक माने गए। श्रीकांत वर्मा एवं धूमिल इत्यादि अकविता के प्रमुख हस्ताक्षर माने जाते हैं। अकविता ने कविता का क्षेत्र पूरी तरह बदल दिया। व्यंग्य एवं तीखापन इस दौर की कविताओं का प्रमुख स्वर था।

इसके बाद भी कई कविता आन्तोलन आए । आज समकालीन कविता का दौर जारी है ।

हिन्दी साहित्य में आधुनिक काल या आधुनिकता की शुरुआत भारतेन्दु युग के मानी जाती है। प्राचीन मूल्यों की सापेक्षया में वर्तमान और नवीन मूल्य निश्चय ही आधुनिक है।

- हिन्दी साहित्य में आधुनिकता से अभिप्राय मध्यकाल से भिन्नता भी है।
- मध्यकाल से हटकर आधुनिक काल अपनी टेक्नोलॉजी और संचार सुविधा, प्रेस आदि की दृष्टि से भी सुदृढ़ हुआ है।
- नये आधुनिक परिवेश में लोग अपने को नये ढंग में ढालने लगे।
- पुरानी परमपराएं टूटने लगी।
- यह काल औद्योगिकरण, नगरीकरण और बौद्धिकता से सम्बद्ध है, जिसमें देश, राष्ट्र, ईश्वर और धर्म की भी नवीन व्याख्याएं की जाने लगी।
- व्यक्ति अपना व्यक्तित्व कहीं दूर खो रहा है। इस खोये हुए व्यक्ति की खोज प्रक्रिया का नाम आधुनिकता है।

आधुनिकता नें यथार्थ का स्वरुप ही बदल गया। पाप-पुण्य, धर्म-अधर्म, अच्छे बुरे का जो कसौटियाँ धर्म-ग्रंथो में दी हुई थीं, उनकी प्रामाणिकता अब समाप्त हो गयी, पुराने निरर्थक मूल्य विघटित हो गये। पाश्चात्य विचारकों का प्रभाव भी आधुनिक साहित्य पर पडा ।

हिन्दी साहित्य आधुनिक काल का उद्भव आ. रामचंद्र शुक्ल ने संवत् 1900 वि. से माना है और आ. नगेन्द्र ने हिन्दी साहित्य आधुनिक काल समय 1850 से माना है। हिन्दी साहित्य आधुनिक काल के समय के बारे में विविध मत रहे है।

कविता का अर्थ एवं परिभाषाः-

कविता भाव का स्वतः स्फूर्त उच्छलन है और उसके आस्वादन की सर्वोत्तम सिद्धि पाठक पक्ष में भी इसी के अनुरूप भाव के द्वारा होती है।[1]

काव्य केवल सफल प्रयोग का नाम है। प्रयोग के जोखिम के कारण सफल कविता का ही मूल्य बढ़ता है, प्रयोग का नहीं।[2]

काव्य भाषा को शब्द और अर्थ से मुक्ति दिलाने की प्रक्रिया है। भाषा के बंधन का नहीं, मुक्ति का नाम काव्य है। काव्य का कार्य शब्द में निहित अर्थ और संस्कार को जाग्रत करना है। काव्य शब्द और अर्थ - जन्मा होने पर भी वह न शब्द है न अर्थ।[3]

प्राचीन परिभाषाएः-

भामह- शब्दार्थौ सहितौ काव्यम् अर्थात् शब्द और अर्थ की संहति को काव्य संज्ञा देते हैं।

मम्मट - दोषों से रहित, गुणयुक्त, अलंकृत पर यदा - कदा अलंकार -रहित शब्द और अर्थ की संहति को काव्य मानते हैं - तद्दोषौ शब्दार्थौ सगुणावलंकृती पुनः क्वापि।[4]

आ. विश्वनाथ - वाक्यं रसात्मकं काव्यम्। (उनके अनुसार रस काव्य का मुख्य तत्व है)

इसके अतिरिक्त कुछ अन्य आचार्य काव्य पर अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखते हैं-

- काव्य शब्दडयं गुणालंकारसंस्कृतयोः शब्दार्थयोर्वतते।[5]
- शब्दार्थौ काव्यम्।[6]
- अदोषौ सगुणौ अलंकारौ च शब्दार्थौ काव्यम्।[7]

---

[1] निर्मला जैन, नयी समीक्षा के प्रतीमान-आधुनिक आलोचना, क्लीन्थ ब्रुक्स, पृ. 23

[2] अज्ञेय, सर्जन और सन्दर्भ, पृ.30

[3] नरेश मेहता, प्रवाद पर्व - भूमिका

[4] मम्मट, काव्य प्रकाश, 04 सू0 1, पृ0 19

[5] वामन, काव्यलंकार सूत्र, 1, 1

[6] रुद्रा, काव्यलंकार, 2, 1

[7] हेमचन्द्र, सिद्धहेम, काव्यानुशासन, पृ. 16

मध्ययुगीन परिभाषाः-

- गिरा अर्थ जल वीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न- तुलसीदास

आधुनिक परिभाषाएं:-

नाना प्रकार के विकारों के योग से उत्पन्न हुए मनोभाव जब मन में नहीं समाते तब वे आप ही आप मुख के मार्ग से बाहर निकलने लगते हैं अर्थात् मनोभाव शब्दों का रूप धारण करते हैं। यही कविता है चाहे वह पद्यात्मक हो चाहे गद्यात्मक। जो बात असाधारण और निराले ढंग से शब्दों द्वारा इस तरह प्रकट की जाय कि सुनने वाले पर उसका कुछ न कुछ असर जरूर पे, उसी का नाम कविता है।[8]

काव्य की परिभाषा जयशंकर प्रसाय काव्य और कला में इन शब्दों में देते हैं- काव्य आत्मा की संकल्पनात्मक अनुभूति है जिसका संबंध विश्लेषण, विकल्प या विज्ञान से नहीं है। वह एक श्रेयमयी प्रेय रचनात्मक ज्ञानधारा है।[9] प्रसाद के विचार से काव्य सत्य की ही अनुभूति है। वे श्रेय और प्रेय को अनिवार्य मानते हैं। काव्य में जो आत्मा की मौलिक अनुभूति की प्रेरणा है वही सौदर्यमयी और संकल्पात्मक होने के कारण अपनी श्रेयस्थिति में रमणीय आकार में प्रकट होती है।

महादेवी जा के विचारनुसार कविता हमें असीम सत्य की झाँकी दिखाती है।

शुद्ध कविता की खोज में दिनकर स्पष्ट करते हैं- कविता मनुष्य की एक शक्ति है, चीजों को एक दृष्टि है, वह एक ऐसा यन्त्र है जिससे मनुष्य का वह रूपपकडा जाता हैं, जिस रूप को ग्रहण करने अथवा समझने में अन्य सभी विद्याएँ असमर्थ हैं।[10]

---

[8] डॉ. भागीरथ मिश्र, हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास, पृ. 202-203
[9] जयशंकर प्रसाद ग्रंथावली, पृ.458
[10] रामधारी सिंह दिनकर, शुद्ध कविता की खोज, पृ. 6